UNIVERSAL LIBRARY

OU_182009

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82 N33P Accession No. H41

Author नायर, गोपीनाथन्

Title पशु - 1963.

This book should be returned on or before the date last marked

पशु

[मलयालम-भाषा के सामाजिक लघु नाटक
मृगम् का हिन्दी-रूपान्तर]

●

मूल लेखक
टी. एन. गोपीनाथन् नायर
आकाशवाणी (नाटक-विभाग), तिरुवन्तपुरम् (केरल राज्य)

रूपान्तरकार
रघुवीर शरण 'व्यथित' एम. ए.
हिन्दी-विभाग : सैण्ट टामस कालेज, पालई (केरल)
तथा
वसुवन् एम. ए.

●

वासुदेव प्रकाशन
दिल्ली-६

प्रकाशक :
वासुदेव प्रकाशन
माडल टाउन, दिल्ली—१

•

प्रथम संस्करण १९६३
प्रतियों की संख्या · २०००

•

सर्वाधिकार :
प्रकाशकाधीन सुरक्षित

•

मूल्य . १·८० रु०

•

मुद्रक :
न्यू डि-लक्स प्रिन्टर्स, दिल्ली—६

नाटय-तत्त्व के आद्याचार्य

भरत मुनि

को

आदर समर्पित !

—टी. एन. गोपीनाथन

नाटककार तथा प्रस्तुत नाटक

नाटककार

श्री टी. एन. गोपीनाथन् नायर मलयालम भाषा के उच्च तथा लब्ध-प्रतिष्ठ नाटककार हैं। रंगमंच के उपयुक्त साहित्यिक एवं सामाजिक नाटकों के निर्माण में केरल में जितना सम्मान इन्हें मिला है उतना विरले ही नाटककारों को प्राप्त है। साहित्य-कर्म वस्तुतः इन्हें अपने पूज्य पिता श्री साहित्य पञ्चानन पी. के. नारायण पिल्ले से वरासत में प्राप्त हुआ है। 'साहित्य-पंचानन' इनकी उपाधि है। जैसा कि इस उपाधि से प्रकट है यह भी केरल राज्य के सम्मान्य साहित्यकारों में गिने जाते हैं। श्री० गोपीनाथन् नायर का जन्म २५ सितम्बर सन् १९१७ को हुआ। आजकल आप तिरुवन्त-पुरम् (केरल की राजधानी) के आकाशवाणी-केन्द्र में नाटक-प्रणेता के रूप में कार्य कर रहे हैं।

श्री० नायर ने कविता, उपन्यास तथा नाटक इन तीनों साहित्यिक क्षेत्रों में अपने कृतित्व का परिचय दिया है, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

कविता संग्रह १. कलित्तोनि (नैया ; २. मुकुटाञ्जलि।

उपन्यास — १. सुधा, २. मालयुटे माला (माला की माला)

नाटक— १. अकवुम् पुरवुम् (भीतर-बाहर), २. मृगम् (पशु)
३. घटिकारम् नीङ्ङन्नु (घड़ी चलती है)
४. निलावुम् निड़लुम् (चाँदनी और छाया)
५. निड़ल कुत्तु (छायाङ्क), ६. पुदिय निरत्तु (नयीसड़क)
७. प्रतिध्वनि, ८. रण्डुम् रण्डुम् अञ्ज (दो और दो पाँच)
९. मानम् तेडिञ्ञु (आसमान खुला)
१०. वड़िये पोया वय्यावेलि (आ बैल मुझे मार)

११. स्वप्न-मेखला (एकाङ्की-संग्रह)
१२. 'अवन ओरु पेण्ण' आण (वह एक जवान लड़की है)
१३. विधियेविधि (केवल विधि),
१४. पूक्कारी (फूल वाली) [तमिल में इसका अनुवाद हो चुका है।]
१५. वीट्टिले वेडिच्चं (घर का दीया)
१६. पिन्निरिप्पन् प्रस्थानं (रूढिवादी विधा)
१७. पिन्ने काणाम् फिर मिलेंगे)
१८. अम्मा वीडु (अम्मा का घर)।

इनके ये सभी नाटक रंगमंच से सीधा सम्पर्क रखते हैं। अधिकतर नाटक तो कई कई महीने तक एक ही प्रेक्षागृह में अभिनीत होते रहे हैं, और जनता के स्वस्थ मनोरंजन तथा साधुवाद के पात्र बने है।

अन्य भारतीय भाषाओं की भांति मलयायम भाषा में भी पहले पौराणिक, ऐतिहासिक और सगीतात्मक नाटक लिखे जाते थे। इस धारा को सर्वप्रथम नया मोड़ देने वाले श्री० एन् कृष्णपिल्ले हैं, जिन्होंने इब्सन और स्ट्रीनवर्ग से प्रभावित कुछ नाटकों का प्रणयन किया। उनमे 'भग्नभवनम्', 'कन्यिका', 'बलाबलम्', 'मुड़क्क मुदल' (पूँजी) आदि प्रमुख हैं। इनके नाटकों की कुछ एक विशेषताएँ हैं—यथार्थ परिवेश, सटीक और विस्तृत रंगमंचीय संकेत, प्रतिदिन की अनुभूत गंभीर समस्याओं का यथार्थ बोध एवं विश्लेषण।

इनके उपरान्त साम्यवादी दृष्टिकोण का पुट लेकर चलने वाला 'अवनू वीन्दुम् वरन्नु' नामक नाटक नाटक-प्रेमी जनता के सम्मुख उपस्थित हुआ। इसका हिन्दी-अनुवाद 'वह फिर आता है' नाम से प्रस्तुत हो चुका है। इस नाटक के प्रणेता हैं—स्वर्गीय सी. जे. तोमस। इस नाटक का कथानक वर्तमान समाज से सम्बद्ध एक गत्यात्मक समस्या का प्रदर्शन करता है, जो एक ओर एक प्रोषितपतिका की मानव-सुलभ दुर्बलता और स्खलन से उत्पन्न होती है, और दूसरी ओर युद्ध में अन्धे होकर लौटे युवक के मानसिक संघर्ष से। इस नाटक की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं—स्पष्ट रंगमंचीय संकेत तथा

उपयुक्त और चटखते सवाद। इसके अतिरिक्त यह नाटक प्रगतिवाद से प्रेरित साम्यव दी विचारधारा से सम्भवतः जान-बूझकर अत्यधिक आग्रहीत रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो कि वस्तुतः अपने-आप में जितना गुण है उससे कहीं अधिक दोष है।

साम्यवादी दृष्टिकोण को लेकर चलने वाले नाटककारों में श्री० तोपस के अतिरिक्त दो अन्य नाटककारों का नाम भी उल्लेखनीय है। वे हैं—तोप्पिलभाषी नारायण पिल्ले और श्री० के. टी. मुहम्मद जो कि मलयालम-नाटक-साहित्य की अभिवृद्धि में सहयोग दे रहे हैं।

श्री० टी. एन. गोपीनाथन् नायर मलयालम भाषा के इन्हीं नाटककारों की पीढ़ी में से हैं, जिन्होंने इब्सन के नाट्य सिद्धान्तों एवं शैली से प्रभावित होकर अपने यहाँ की समस्याओं को नाटक के कथानक के रूप में प्रस्तुत किया। फलतः इनके अधिकतर नाटकों की भी प्रायः वही निम्नोक्त विशेषताएँ हैं जिन्हें इब्सन के प्रभाव-स्वरूप माना जाता है—मानसिक संघर्ष, मानव-स्वभाव की विचित्रता, निरन्तर विकासमान कथावस्तु और गम्भीर सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं का प्रस्तुतीकरण—जिनका किसी विशेष, राजनीतिक मान्यता अथवा वाद से साक्षात् अथवा असाक्षात् सम्बन्ध नहीं होता। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नाटककार ने इन गम्भीर समस्याओं को विविध रूपों में प्रतिपादित किया है। कभी वे साक्षात् एवं प्रत्यक्ष रूप में दर्शक के सामने आती हैं, कभी असाक्षात् एवं अप्रत्यक्ष रूप में। कभी नाटककार इन्हें धीरे-धीरे प्रस्तुत करता है और कभी आकस्मिक रूप में। कभी ये गम्भीर परिस्थिति में हमारे सम्मुख आ उपस्थित होती हैं और कभी व्यंग्य एवं परिहास के मृदु वातावरण में। किन्तु जिस भी रूप में इन्हें प्रस्तुत किया गया है उससे समस्या निखर उठी है—वह मुँह बाये हमारे सामने आ खड़ी होती है, वह हमारे अन्तर को कुरेदती है, तथा हमसे अपना समाधान माँगती है। बेचारा दर्शक इसका समाधान कर सके अथवा नहीं—पर नाटककार की सफलता इसी में है कि वह किसी भी समस्या को स्पष्ट रूप में हमारे सामने रख दे। नाटककार नायर इसी सफलता के लिए वद्धपिन के पात्र हैं।

प्रस्तुत नाटक : पशु (मृगम)

प्रस्तुत नाटक 'पशु' मलयालम भाषा में लिखित मृगम् का हिन्दी-रूपान्तर है मलयालम भाषा में प्राचीन संस्कृत भाषा के अनुरूप 'मृगम्' शब्द का अर्थ है—पशु। राघवन् कुरुप एक धनी व्यक्ति है, इसे जंगली पशुओं के शिकार का शौक है, और उसका यही शौक एक अन्य मानसिक रूप ग्रहण कर गया है—वह अपने अधीन व्यक्तियों को भी पशु ही समझता है। उनका लालन-पालन करता है तो केवल इसीलिए कि उनकी खाल-खींच सके, उनके रूप-सौन्दर्य का आनन्द लूट सके। पहले वह उन्हें चकमा देकर फांसता है, उनका पोषण करता है, सजाता संवारता है—किन्तु अन्त में ·····।

भारती—अप्रतिम रूपसी नारी, किन्तु निर्धन एवं जर्जर परिवार में पली युवती! कुरुप ने उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे विवाह-बन्धन में बाँध लिया। फलतः संसार ने उसे उदारता और विशाल-हृदयता का प्रतीक मान लिया। दुर्भाग्यवश छः-सात वर्ष बाद वह बीमार पड़ गयी ऐसी कि रोग-शय्या ही उसका एक मात्र आधार बन गयी। अब उसका रूप-सौन्दर्य लुट चुका था। कुरुप उससे उदासीन हो गया।

वासन्ती भारती की छोटी बहिन! तब ११-१२ वर्ष की थी, अब १८-१९ वर्ष की है, मेडिकल कालेज के प्रथम वर्ष की छात्रा! कुरुप उसके रूप पर मुग्ध हो गया, किन्तु वासन्ती से कुछ कह नहीं पा रहा। उसके व्यवहार से भारती उसके मन की मलिनता को भाँप गयी। इधर इसका स्नेह मेडिकल कालेज के एक छात्र बालचन्द्रन् के साथ हो गया।

विजयम्मा भारती की सखी, वासन्ती के दुःख की साथिन! शेखरन् विजयम्मा का पति! डाक्टर मेनोन कुरुप परिवार का चिकित्सक! ये तीनों चाहते हैं कि वासन्ती का विवाह बालचन्द्रन् के साथ हो जाए। वे कुरुप से इसकी चर्चा करते हैं। कायर कुरुप हाँ में हाँ मिलाता है। पर वह भला इस सम्बन्ध को कैसे सहन कर सकता था? उसने अवसर पर एक चाल चली और बालचन्द्रन् को वासन्ती के प्रति विरक्त बना दिया।

वासन्ती, अपना प्रतिशोध कायर और क्रूर कुरुप से लेना चाहती है उसे तिल-तिल करके मारकर, पर उसका यह अरमान पूरा न हुआ। किन्तु वह उसे शीघ्र ही मार डालने में सफल होगयी—पशु की तरह लालिता मानवी वासन्ती ने विष में बुझे सींगों को पशु-मानव कुरुप के पेट में घोंप दिया, और उधर बेचारी भारती, रूप-पिपासु शिकारी कुरुप की शिकार भारती, बलि-पशु की भांति·····

यह है संक्षेप में पशु (मृगम्) की कथावस्तु ! कायर, क्रूर और स्वार्थी व्यक्ति का अन्त, जो दूसरों का पालन-पोषण तो करता है किन्तु उन्हें बलि-पशु समझकर !

इस लघु नाटक की कतिपय विशेषताओं में से प्रथम उल्लेख्य विशेषता है कि यह रंगमंच के उपयुक्त है। नाटककार इस दिशा में अत्यन्त सतर्क एवं निपुण है। रंगमंच-सकेत तो स्थान-स्थान पर उसने दिये ही हैं, साथ ही आवश्यकता पड़ने पर रंगमञ्च पर स्थित पात्रों को [तथा साथ ही साथ प्रेक्षकों को भी] अन्दर वाले कमरे की बातचीत से भी अवगत कराता जाता है—ध्वनि-विस्तारक यन्त्र की सहायता से। इस प्रक्रिया से एक तो अनावश्यक विस्तार नहीं हुआ। दूसरे, इससे वास्तविकता भी कहीं अधिक बढ़ गयी है—इस तरह नाटककार ने अपने पात्रों को छिपकर सुनने की मानवीय दुर्बलता से भी प्रकारान्तर से बचा लिया है। इस प्रक्रिया से नाटकीयता में प्रवृद्धि तो हुई ही है।

इस नाटक की दूसरी विशेषता है इसके संवाद जो चुस्त और व्यञ्जना-पूर्ण हैं। वे पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करते हैं तथा प्रेक्षक के औत्सुक्य को बढ़ाते हैं। विशेषत: कुरुप और वासन्ती के कथन इस दृष्टि से पठनीय हैं। उनके मन में क्या है, यह प्रारम्भ में ज्ञात नहीं होता—यद्यपि वे प्रसंगानुकूल ही उत्तर-प्रत्युत्तर देने से प्रतीत होते हैं। किन्तु उनके कथनों का वास्तविक अभि-प्राय अन्त में ज्ञात होता है जब कथावस्तु अपनी परिपक्व अवस्था तक पहुंचने लगती है।

इस नाटक की अन्यतम विशेषता है इसका अन्तिम दृश्य, जो नाटककार के नाट्य-कौशल का सूचक है। अपनी चाल के जाल में न फँसती मृगी पर वह नाटक-पशु अब खुला आक्रमण कर देता है, किन्तु आधुनिक मृगी की बुद्धि के सींग भी अति पैने हैं। हर प्रकार से अपनी सुरक्षा के उपाय करने पर भी जब उसने देखा कि अब कोई अन्य उपाय शेष नहीं रहा तो उसने इन्हें विष में बुझा कर मानव-पशु के पेट में घुसेड़ दिया। अभी दर्शकगण क्रूर कुरूप के अंत की खुशियाँ मनाने ही लगा था कि उधर निरीह भारती की हत्या के संकेतित एवं हृदय-विदारक समाचार से वह शोकाकुल हो तुरन्त आंसु बहाने लग जाता है। 'भावसन्धि' की इस सफल नाट्याभिव्यक्ति के लिए नाटककार हमारे शतशः वन्दापन का पात्र है।

इस हिन्दी-रूपान्तर के माध्यम से मलयालम भाषा के इस नाटककार का किञ्चित् परिचय हिन्दी-पाठकों को मिल सकेगा। इस रूपान्तर का प्राग्रूप मेरे प्रिय शिष्य वसुवन् एम. ए ने प्रस्तुत किया है। वस्तुतः उसके सहयोग के बिना यह कार्य इस रूप में सम्पन्न न हो पाता। मेरे चिरमित्र डॉ० सत्यदेव चौधरी, प्राध्यापक हिन्दी-विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय ने इसकी पाण्डुलिपि का परिष्कार एवं संशोधन किया है। इसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। वसुवन् का और मेरा प्रयास रहा है कि यह रूपान्तर मूल कृति की भावना को अधिकांशतः मूलरूप में ही प्रस्तुत करे। कहीं-कहीं इसमें किञ्चित् परिवर्तन भी करना पड़ता है, किन्तु इससे मूल भावना में किसी प्रकार की क्षति नहीं हुई। इसके अतिरिक्त हमारा यह प्रयास भी रहा है कि यह रूपान्तर मौलिक रचना का सा ही आनन्द दे। हमें इन दोनों उद्देश्यों में कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय हिन्दी के सुविज्ञ पाठकजन ही करेंगे।

मुझे विश्वास है कि हिन्दी-जगत् इस रूपान्तर का स्वागत करेगा। ऐसे प्रयासों का साहित्यिक महत्त्व तो है ही, साथ ही भारत की भावात्मक एकता के स्थापन में भी सहायक होंगे—इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं है।

सेंट-टामस कालेज पालइ (केरल)

१५ अगस्त, १९६३

—रघुवीरशरण 'व्यथित'

पशु

*

पात्र

राघवन् कुरुप	....	शिकार का शौकीन धनी [आयु : ३०-३१ वर्ष]
भारती	....	कुरुप की पत्नी [आयु : २६-२७ वर्ष]
वासन्ती	....	भारती की बहिन [आयु : १८-१९ वर्ष]
विजयम्मा	...	भारती की सखी
शेखरन् नायर	....	विजयम्मा का पति
डाक्टर मेनोन	....	कुरुप-परिवार का चिकित्सक
बालचन्द्रन्	....	मेडिकल कालेज का छात्र, वासन्ती का प्रेमी
वेणु मद्रन्	....	बालचन्द्रन् के सहपाठी
पंकज (गूंगा)	....	कुरुप का माली
नाणी	....	कुरुप की नौकरानी
वेलु	....	गाड़ीबान, नाणी का प्रेमी

पहला दृश्य

[रंगमंच-संकेत :

कुरुप का घर। जनाना कमरा। परिष्कृत रुचि की मेज, कुर्सी आदि से सुसज्जित। पीछे की दीवार में दो दरवाजे, जिनके खुलने पर भीतर के दो कमरे दिखायी देते हैं। एक कमरे में भारती का एनलार्ज किया हुआ चित्र और बारहसींगे के सिर का जोड़ा टँगा है। खोल में एक बन्दूक लटक रही है। प्रकट है कि वह शिकार खेलने के काम आती है। समय सन्ध्या। भारती रोग-शय्या पर पड़ी है। जब यवनिका उठती है तो रंगमंच सूना रहता है। भारती के कमरे में विजयम्मा और वासन्ती हैं, उनकी बातचीत (ध्वनि-विस्तारक से) सुनायी पड़ रही है। द्वार के झीने परदे के पार उनका चलना-फिरना भी दिखायी पड़ता है।]

भारती—(खाँसती है) लगता है, छाती फट जाएगी, अब और नहीं सहा जाता।.....वासन्ती, यह दवा अब न दो। बहुत कड़वी है..... जीजी बैठती क्यों नहीं ?

विजयम्मा—(मन में) नहीं बैठूँगी। बैठी तो भारती बोलती जाएगी। (प्रकट) वासन्ती ! थोड़ी पीनी दे दो। कड़वाहट मिट जायेगी।

वासन्ती—पान का डंठल दिया है, बहन को वही पसन्द है।

भारती—ज़रा देर जीभ मीठी हो जाना ही पर्याप्त है क्या ?.....सहा नहीं जाता जीजी, बोला भी नहीं जाता।

विजयम्मा—वैसे तुम बोलो भी मत। हम दूसरे कमरे में जा बैठेंगी। नींद आती है क्या ?

भारती—सोने की कोशिश करूँगी।.....वासन्ती, जीजी को कुछ जल-पान न दिया ?

वासन्ती—नाणी बना रही है चाय। लाती ही होगी।

विजयम्मा—उहम्, इसकी क्या ज़रूरत है, भारती तुम सोने की कोशिश करो।

भारती—निगोड़ी नींद भी मुझे नहीं चाहती। मुझे कोई नहीं चाहता.... वासन्ती, बच्ची को कुछ दिया ?

वासन्ती—दूध पीकर सो रही है।

भारती—जीजी, तुमने बच्ची को देखा। मुझे वह भी नहीं चाहती। वह भी वासन्ती पर ही रहती है। सबको मुझ से नफ़रत है।

विजयम्मा—नहीं, ऐसी बात नहीं, हम सभी तो भारती को चाहते हैं। किसी को घृणा नहीं है। खाट से लगने पर ऐसे ही वहम उठा करते हैं। अब और मत बोलो। खाँसी उठेगी। वासन्ती, चलो हम दूसरे कमरे में बैठेंगे।

भारती—(कराह कर) क्या तुम्हारे जीजा जी यहाँ नहीं हैं।

वासन्ती—हैं, अख़बार पढ़ते हैं।

विजयम्मा—भारती, क्या उन्हें बुलाऊँ ?

भारती—न, रहने दो, मत बुलाओ।

विजयम्मा—ज़रा जल्दी में हूँ। मैं अब जाऊँगी। कल फिर आऊँगी। सु

भारती—हुँ !

जीजी।

[सन्नाटा छा जाता है। रंगमंच के एक ओर से नाणी और दूसरी ओर से वेलु का प्रवेश। नाणी के हाथ में चाय की ट्रे है।]

नाणी—कौन ! छोटी मा विजयम्मा वेलु जी की गाड़ी ही में आयी हैं क्या ?

वेलु—तो इसमें ताज्जुब की क्या बात है ?

नाणी—ऐसी खच्चड़-गाड़ी में कौन चढ़ेगा ?

वेलु—हुँ, खच्चड़ । अरी लौंडिया ! शहर भर में झूला न झुलाने वाली मेरी ही तो गाड़ी है । बस मेरी ही ! जानती हैं, पँच-कल्याणी है, पँच-कल्याणी !

नाणी—कौन ?

वेलु—घोड़ी मेरी !

नाणी—घोड़ी है ! गदहिया, निरी गदहिया । बदलोगे वेलु जी तभी भाग चमकेगा । कैसी मरतैली चाल है—लुढ़क-पुढ़क !

वेलु—ओ हो, अरे जी हट गया क्या ? अरी तेरी नानी की उमर की है । इस उमर में दौड़ती है, यही काफ़ी है ।.....चल तू आगे मेरी गाड़ी में मत बैठना ।.....ज़रा गुन मानना चहिए । समझी !

नाणी—क्यों ऽ ऽ वह पंचकल्याणी है, चकोर-रंगी है ! डींग तो ऐसी कि बस !

वेलु—अरी, जो मेरी है ऐसी ही है । तुझे भी तो मैं ऐसी ही बताता हूँ ।

नाणी—क्या कहा ? उई, मरुडक्काट्टमा । क्या मैं तुम्हारी हूँ ?

वेलु—नहीं तो फिर क्या ?

नाणी—फिर....फिर तो ज़रा सोच समझ कर बोलना वेलु ! तुम तो बस ऐसी बात कहोगे—सिर न पैर । कोई खड़े हों, सुन लें, तो क्या क्या न समझ बैठेंगे । बस.....हाँ, फिर तो बोरिया-बिस्तरा बाँधना ही पड़ेगा ।

वेलु—(प्रशंसा-पूर्वक) अरी वाह क्या सरपट दौड़ रही है। यहाँ से धक्के मिलेंगे तभी तुझ से मेरी शादी होगी।

नाणी—(झेंपती हुई) शादी ! (गंभीर होकर) भई, शादी भी कोई दिल्लगी है।

वेलु—किसने कहा दिल्लगी है।

नाणी—कितनी बार कह चुकी हूँ कि हाँ·····

वेलु– इससे क्या ? मैं तो कहूँगा ही। मैं तुझ से ही बंधना चाहता हूँ। तुझे कोई एतराज़ हो तो बता।

नाणी—भई, मेरे मन में यह बात बैठ गयी तो काली माई की सौगन्ध, निकालना मुश्किल हो जाएगा। फिर न कहना मैंने बताया नहीं·····फिर कहो कि मैंने सुना नहीं, जाना नहीं, तो समझ लेना, हाँ·····

[ऐसा संकेत करती है। गले में फंदा लगाकर मर जाऊँगी]

वेलु –छी-छी, अरी कैसी है तू, घोड़ी की नाल तेरी जीभ पर ठोकनी चाहिए। देख, वेलु जब कहता है तुझ से शादी करूँगा तो करेगा ही। बस मर्द की एक बात। तेरे माँ-बाप से भी कह चुका हूँ। तुझसे भी सौ बार कहा है। पकपका कर भी ककड़ी की तरह कचर-कचर करती है। देख ! (हाथ का कोड़ा दिखाता है।)

नाणी—(व्रीड़ा-पूर्वक) तो फिर क्यों इधर आ टपके ?

वेलु—(आँख गड़ाकर देखते हुए) तो तुझ को मुझ पर पूरा यकीन है ?

नाणी—(बनावटी कोध से) नहीं तो फिर तुम्हारा मुँह देखकर हँसने और रूठने क्यों बैठती ?

वेलु—सो तो ठीक ! पर तू मुझे सूँघने को भी नहीं मिलती।

नाणी—मैं क्या सूँघनी हूँ, जो नाक से सूँघोगे।

वेलु—बेबात की बातें करेगी तो मैं रूँठ जाऊँगा, हाँ !

नाणी—अरे क्या रूँठ गये !

वेलु—ठहर, ज़रा देख, छोटी मा के जाने का समय हुआ क्या ?

नाणी—ऐसी क्या जल्दी पड़ी है ?

वेलु—वहाँ और एक सवारी जो खड़ी है।

नाणी—यह चाय-पानी उनका ही है। खा-पीकर जाएंगी। अरे तुमने तो कितने दिन से कह रखा है कि तुम मुझे गाड़ी में सिनेमा ले जाओगे।

वेलु—तो क्या कठिनाई है। आज ही चल।

नाणी—समय देखकर कहूँगी। गाड़ी में बैठने को बड़ा मन करता है।

वेलु—(संतुष्ट होकर) ऐसा ? ठीक है। तुझे मैं गाड़ी में बिठाकर न ले जाऊँगा।

नाणी—तो फिर गाड़ी की छत पर !

वेलु—देख, अपनी ही सीट पर.....इधर.....अहा हा..... मैं सीटी बजाऊँगा। मेरी पंचकल्याणी उड़ चलेगी। (**धीमे स्वर** में) देखने वाले समझेंगे, मालिक और मालकिन जा रहे हैं।

नाणी—चुप रहो भई ! इस वेलु की ज़बान है कि बस !

वेलु—(**कमर की पेटी से एक खत निकाल कर**) अरी, (**रहस्य-पूर्वक**) यह वासन्ती मा को देना, कोई देखे ना !

नाणी—ओ हो, आज भी दे भेजा है।

वेलु—इसीलिए मैं अन्दर चला आया हूँ। ज़रा सफ़ाई से देना !

नाणी—वेलु जी, यह ज्यादा चलेगा नहीं। इसमें बड़ी गड़बड़ है। तुम से बहुत कुछ कहना है।

वेलु—ऐसा मिट गया वह फूल-सा लड़का ! एक गज़ भर रस्सी का

फन्दा गले में डाल लेगा ! पढ़ता नहीं, खाता नहीं, सोता नहीं। रोज़ ही तो देखता हूँ।

नाणी—क्या किया जाए वेलु ! मैं तो तीन-पाँच कुछ नहीं जानती। सोने की कलसी। उफ ! उस पर क्या-क्या बीत रही है। क्या कुछ होने को है। (**भय-पूर्वक**) वेलु ! अब तुम्हें चल देना चाहिए। साहब इधर उधर से आ टपकेंगे।

वेलु—(**धीरे से**) वह बटमार यहीं है क्या ? ताश-जुआ खेलने नहीं गया ?

नाणी—धीरे वेलु जी धीरे ! उधर अखबार-फ़खबार पढ़ रहे हैं। (**दो कदम चलकर**) वासन्ती मा को कालेज ले जाने वेलु जी कल भी आयेंगे न ?

वेलु—अरी, इतवार को कालेज लगता है क्या ? मेंह से बचने को भी कभी कालेज के फ़र्श पर पैर रखने का भाग्य हुआ है तेरा ?

नाणी—ओ हो, तुम साहब तो पढ़-पढ़ कर पेशकार बन गये हो न ? इसमें भी हम दोनों बराबर ही हैं। (**कमरे की ओर देखकर**) ऊँऽऽ, छोटी मा आती हैं।

वेलु—तो मैं चला। (**जाता है**)

[**वासन्ती के कमरे से विजयम्मा और साथ में वासन्ती रंगमंच पर आती हैं।**]

विजयम्मा—(**भारती के कमरे की ओर देखकर**) लगता है, भारती सो गयी। मैं भी चलती हूँ।

वासन्ती—क्यों री, तुझ से चाय लाने को कहा था ? कितनी देर हो गयी ! किससे बातें कर रही थी।

नाणी—वेलु जी से।

विजयम्मा—वासन्ती, कौन है वह।

वासन्ती—गाड़ी चलाता है।

विजयम्मा—वही न ? कह तो ऐसे रही थी जैसे कोई गवर्नर साहब आ गये थे।

वासन्ती—उसका तो वह गवर्नर ही है।

नाणी—पर आप लोगन को तौ तमाशा ही है। लो, यह चाय ठण्डी होय है। उई काली मा, चाय को पानी तो चूल्हे पर छोड़ आई हूँ। चलूँ !

[**मटकती हुई चली जाती है।**]

विजयम्मा—पगली कहीं की, बिल्कुल पहले जैसी ही है, कहीं कोई परिवर्तन नहीं।

वासन्ती—बड़ा स्नेह करती है बेचारी !

विजयम्मा—वासन्ती, अरे ! यह भारती कितनी कमज़ोर हो गयी है।

वासन्ती—उसके बारे में न कहना ही अच्छा ! एक-एक दिन जाने कैसे धकेल रही है।

विजयम्मा—कमरे में घुसी तो लगा मानो अस्पताल में जा खड़ी हूँ।

वासन्ती—चलो, इस घर में पैर रखने पर जीजी को जेल का अनुभव नहीं हुआ; यही बहुत है।

विजयम्मा—क्या ? यह घर कोई जेलखाना है।

वासन्ती—नहीं, जेलखाना नहीं, पशुशाला है·····यही कहना समीचीन होगा। पशुशाला·····तरह-तरह के पशु अलग-अलग कमरों में रहते हैं।

विजयम्मा—पशुशाला ? ऐसा मत कहो वासन्ती, हर घर लगभग ऐसा ही होता है।

वासन्ती—न, यह घर अन्य घरों-सा नहीं है। यहाँ ऐसे-ऐसे पशु रहते हैं जो अवसर दिखायी नहीं पड़ते (**चाय का गिलास खाली देखकर**) थोड़ी चाय और·····

विजयम्मा—क्या इधर गेंडा भी मिलता है ?

वासन्ती—गेंडा, बारहसींगा, भेड़िया, इधर सब कुछ है, जीजी !

विजयम्मा—कुरुप भैया के शिकार के बारे में कहती होगी। दीवार पर बन्दूक भी लटक रही है। पर वह पशुओं को मारकर ही तो लाते हैं न ?

वासन्ती—कभी-कभी ज़िन्दा भी।

विजयम्मा—ऐसा ! तब तो यह एक सनक ही है। अभी इन्हीं दिनों शुरू हुई दिखती है (दीवार पर दृष्टि डालकर) ऐसे सींगों का मृग-शिर हमें देने का वायदा किया था।

वासन्ती—हाँ, सजावट की अच्छी वस्तु है। चाय और न लोगी ?

[पंकज एक टोकरी में फूल लिये आता है। दोनों को सविस्मय देखता है।]

विजयम्मा—बहुत है। अरे, यह ट्रे उधर ले जा।

[वासन्ती उँगली से ट्रे दिखाती है। बात समझकर पंकज मुस्कराता हुआ ट्रे हटाता है]

विजयम्मा—कौन है ? वही पंका न।

वासन्ती—हाँ, वही है। घर जाकर इलाज किया मगर फ़ायदा न हुआ। फिर यहीं लौट आया।

विजयम्मा—क्यों रे पंका, भूल गया मुझे !

[संकेत करता है—'नहीं'। वह संकेतों से यह भी बताता है कि घर गया था, इंजेक्शन लगवाया था मगर फ़ायदा नहीं हुआ। ज़बान से बोल नहीं सकता, फिर इस घर में वापस आया, वासन्ती ने ही उसकी रक्षा की—आदि आदि।]

विजयम्मा—पूरा बम-भोला है ! कुरुप भैया ही यह विशालता रखते

हैं। पुण्य का काम है।

वासन्ती—फुलवारी देखने को रख लिया है।

[पंकज टोकरी से फूल लेकर विजयम्मा की ओर बढ़ाता है।]

विजयम्मा - रहने दो इस उम्र में फूलों का क्या होगा ?

[पंकज मुस्कराकर बताता है कि दो फूल सिर पर लगाने से बहुत सुन्दर लगेगा।]

वासन्ती—ले लो जीजी, बिना दिये न मानेगा।

विजयम्मा– कैसा है रे तू ! तो ला, दोनों को एक-एक दे दे। (अपने बालों में फूल लगाकर वासन्ती के निकट बढ़ती है) कब से तेरे फूल नहीं गूँथे मैंने।

[पंकज सूचित करता है कि वासन्ती के बालों में सजाने के उपयुक्त यह फूल नहीं है, और विजयम्मा को चटक लाल रंग का फूल देता है।]

वासन्ती—मेरे लगाने को यह यही फूल देगा—जैसे इसी में शोभा है।

विजयम्मा– पंकज का ख्याल सोलह आने सही है, है न ! आदमी बड़ा सरस लगता है। क्यों रे, क्या ख्याल है ?

विजयम्मा और वासन्ती के वेशपाश में लगाये फूल को एक क्षण देखकर पकज बर्तन लेकर भीतर जाता है]

विजयम्मा—लगता है, उसे किसी से मतलब नहीं है। पकज को देखने पर तुम्हारे पशुशाला कहने का मतलब मैं अब समझी।

वासन्ती—जीता है वह भी एक कमरे में। जीभ नहीं है, पर है कृतज्ञता-पूर्ण एक जानवर।

विजयम्मा—कुल मिलाकर चलो सब ठीक है। मैं चलूँ। परीक्षा निकट आ गयी है ? तुझे अभी बहुत पढ़ना होगा न ?

वासन्ती—परीक्षा से मैं नहीं डरती, जीजी।

विजयम्मा—ऐसा ? पहला वर्ष ही है न ? तो कोई बात नहीं, पर यह ध्यान रखना यह मेडिकल कालेज है।

वासन्ती—तीन-चार वर्ष कालेज जा सकती हूँ, यही एक आश्वासन है।

विजयम्मा—बाद में नाम के आगे 'एम. बी. बी. एस.' लगेगा न ?

वासन्ती—डिग्री के लिए ही क्या लड़कियाँ कालेज जाती हैं जीजी ! होंगी कोई। पर मैं ऐसी नहीं।

विजयम्मा—नहीं क्या ? फिर क्यों मेरी रानी बहन, ऐसी सजधज कर किताबों का गट्ठर लादे कालेज जाती है।

वासन्ती—वेदनाओं से सिर छिपाने को। सब कुछ भूलकर कुछ देर को आदमी ही रहने को।

विजयम्मा—क्या ? सिर छिपाने को, भूलने को। आखिर तुम्हें यहाँ ऐसा क्या दुःख है ?

वसान्ती—मैंने भी कैसी अनचाही बातें कह डालीं।

विजयम्मा—नहीं, नहीं। पर तुझे आखिर ऐसी परेशानी क्या है ? ज़रा मैं भी तो जानूँ।

वासन्ती—कुछ नहीं, जीजी।

विजयम्मा—खाने-पीने की भी घर में कोई कमी नहीं दिखती।

वासन्ती—ठीक है, जीजी ! अच्छा घर है। रेडियो है। कीमती रंग-बिरंगी साड़ियाँ हैं ! मनचाहे गहने हैं ! रिस्टवाच है, काजल-बिन्दी·····सब कुछ मिला है, जीजी।

विजयम्मा—तो तुम्हें भारती की बीमारी खटकती होगी। स्वाभाविक भी है। पर उसका इलाज भी तो करा रहे हैं ?

वासन्ती—कौन ?

विजयम्मा—और कौन ? डाक्टर ने आकर देखा नहीं ?

वासन्ती—डाक्टर का आना और देखना ही क्या काफ़ी होगा ?

विजयम्मा—दवा नहीं देते क्या ?

वासन्ती—हाँ, हाँ, दवा भी रोज़ आती है।

विजयम्मा—आती ही है ? पीती नहीं है ?

वासन्ती—ठीक समय पर पीती भी हैं।

विजयम्मा—तो फिर ?

वासन्ती—फिर क्या ? कुछ भी नहीं। दीदी खाट पर ही हैं। क्या दवा से ही रोग चला जाएगा ?

विजयम्मा—इलाज तो डाक्टर मेनोन का है न, बड़ा मशहूर है।

वासन्ती—डाक्टरों-वैद्यों का कोई दोष नहीं।

विजयम्मा—मेरी समझ में कुछ नहीं आता। तू साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती।

वासन्ती—जीजी, आप आँखें बन्द करके घर में नहीं आयीं। पहले भी आयी हैं, क्या यह घर वैसा ही है जैसा पहले था।

विजयम्मा—तब·····घर में घर की उजियाली एक दीपिका थी। आज वह रोग-शय्या पर है।

वासन्ती—वह दीपक अब बुझने वाला है। काली छाया उसके चारों ओर फैल रही है। लम्बी परछाईं भी दीवार से हटकर विलीन हो जाती है। लम्बी साँस भी डरते-डरते ही आती हैं। ऐसे घर में जहाँ संगीत और हर्ष हिलोरें लेता था, अचानक यह उलट-फेर कैसे हो गया ? जीजी ने इस पर क्यों नहीं सोचा ?

विजयम्मा—तेरा मतलब क्या है ! तू क्या कहना चाहती है ? जान-बूझ कर कोई·····यह कैसे·····

वासन्ती—एक दिन वहाँ आऊँगी। तब सब बताऊँगी, जल्दी समाप्त न होगा।

विजयम्मा—मैं कुछ अनुमान कर सकती हूँ। पर इतना सब घटित होने की सम्भावना·····

[भीतर के कमरे में तिपाई और बर्तनों के गिरने की आवाज़। कोड़े की फटकार]

विजयम्मा—(कान लगा कर) यह कैसा शब्द है। भीतर कैसा शोर-गुल है ?

[पंकज का दीन रुदन। कुरुप उसे कोड़े मारता है। पंकज लोट-पोट होता रंगमंच पर आता है। कुरुप उस के पीछे क्रोध से काँपता हुआ प्रवेश करता है।]

कुरुप—फिर इस कमरे में पैर रखेगा। फिर इस शैय्या को छुएगा! बता, छुएगा ?

[वासन्ती घबराकर आगे आती है]

वासन्ती—जीजा जी, क्यों मारते है आप इस बेचारे को ?

कुरुप—हुँ! बेचारा !! देखा तूने। यह तेरी चारपाई पर फूल बिछाता है। चूहे की औलाद! कमरे में पैर रखने का भी क्या काम था। वह चारपाई क्या इस टुकड़खोर के छूने के लिए है। फूल बिछाता है·····इस पर!

विजयम्मा—तो भी, यह कैसा क्रोध!

[तभी वह विजयम्मा को देखता है। क्रोध एकदम ठण्डा हो जाता है। वासन्ती मेज़पोश से पकज के घुटने से निकलते खून को पोंछती है। पंकज एक निरीह बच्चे की तरह हाथ निकाले खड़ा रहता है।]

कुरुप—कौन ? विजयम्मा, कब आयीं।

विजयम्मा—थोड़ी देर हुई। अब चलना ही चाहती थी।

कुरुप—मुझे पता न चला, तुम आयीं। यह सुना था, भाई शेखर का तबादला यहाँ हुआ है। खैर! मुझसे मिले बिना हो जाना चाहती थीं, हैं न!

विजयम्मा—सोचा, आपको व्यर्थ क्यों तकलीफ़ दूँ।

कुरुप—तकलीफ़। 'हाउ' (How)? तुम लोगों से मिले कितने दिन हुए? (मुड़ कर देखता है) वासन्ती! ऐसा कुछ नहीं है कि मरहम-पट्टी की जरूरत आ पड़ी। ज़रा उसका मुँह बनाना तो देखो। तुम्हारे पलंग पर फूल बखेरने वाला यह कुछ मामूली नहीं। ज़रा पड़ रहने को जगह दी, सिर पर चढ़ कर ही नाचने लगा। मुझे कुछ ज़्यादा गुस्सा आ गया था।

विजयम्मा—निकम्मा है तो उसे छोड़ देना ही उचित है। क्यों इस प्रकार मारते हैं।

कुरुप—जाता कौन है! जोंक की तरह चिपट गया है, छूटने का नाम ही नहीं लेता। मैं भी उसे छोड़ना नहीं चाहता। अच्छी खासी, एक मोटी रकम इसके इलाज में खर्च करनी पड़ी। वह भी तो वसूल होनी चाहिए। माली है यहाँ।

विजयम्मा- खूब! जैसे मैं उसे जानती नहीं?

कुरुप—(वासन्ती की ओर देखकर) बस, बहुत हुआ, वासन्ती। इतनी दया बेकार खर्च करने की ज़रूरत नहीं। कल वासन्ती के फ़ोटो पर माला चढ़ाते देखा। तभी टोका और डांटा था कि कमरे में फिर पैर मत रखना। पर वह ऐसे थोड़े ही मानेगा। बदमाश!

[**वासन्ती घाव बाँध चुकती है। पकज कनखियों से कुरुप की ओर देखता जाता है।**]

कुरुप—हुँ! जा!! (**नर्म आवाज़ में**) उसकी निगाह तो देखो·····अब कुछ अक्ल से रहेगा।

वासन्ती—घुटने की खाल उड़ गयी है।

कुरुप—कोई बात नहीं, गयी सो गयी, नयी आ जाएगी । वासन्ती विजयम्मा जी को जलपान कराया ?

विजयम्मा—अभी चाय पी चुकी हूँ ।

कुरुप—हाँ, इसमें वासन्ती भूल न करेगी ।

विजयम्मा—भूलेगी तो मैं याद दिला दूंगी ।

कुरुप—(**वासन्ती से**) देखा न, औरतें हों तो ऐसी !···विजयम्मा, वासन्ती के चेहरे पर एक ग्लानि सी·····नहीं लगती क्या ?

विजयम्मा—ग्लानि ? हाँ, कुछ थकावट-सी मालूम होती है ।

कुरुप—विजयम्मा ठीक कहती हैं । सदा समझाता हूँ, तन्दरुस्ती का ख्याल रखो । पर यह है कि कुछ खाती ही नहीं । बस पढ़ना ही पढ़ना । किताब—किताब—किताब ! बस किताब ही सब कुछ है ।

[**भीतर से भारती की आवाज़**—"**वासन्ती !**"]

[**वासन्ती के बुलाये जाने पर कुरुप को बुरा लगता है । चेहरे पर कटुता का भाव उभर आता है, पर वह तुरन्त अपने को सँभाल लेता है ।**]

कुरुप—देखो, भारती बुलाती है । पल भर भी बेचारी को चैन नहीं ।

वासन्ती—(**ऊँचे स्वर से**) क्या चाहिए, जीजी !

भारती—(**अन्दर से**) जरा इधर आ ऽ·····

वासन्ती—अभी आयी ।

कुरुप—अभी मत जाओ, यहीं बैठो इनके पास । ऐसे भी कहीं होता है ।

विजयम्मा—कोई बात नहीं, भारती बीमार है । कोई ज़रूरत होगी ।

कुरुप—इस समय कोई ज़रूरत नहीं है । नौकरानी तो वहाँ है ही ।

विजयम्मा—जाओ वासन्ती, मैं भी जाती हूँ।

कुरुप—इतनी जल्दी ?

विजयम्मा—अब तो आती ही रहूँगी।

कुरुप—वासन्ती ज़रा फाटक तक तो जाओ। शिष्टाचार भी नहीं चाहिए क्या !

वासन्ती—इसीलिए तो यहाँ खड़ी हूँ। (दोनों जाती हैं।)
भारती की आवाज़—"वासन्ती ऽ ऽ ऽ!"

[एक क्षण सोच कर कुरुप भीतर जाता है। कमरे की आवाज़ ध्वनि-विस्तारक की सहायता से सुनायी पड़ती है]

कुरुप—(क्रुद्ध स्वर में) वासन्ती ! वासन्ती !! बुला कर क्या करेगी। मुझसे न बोलने पाये, बात न करने पाये इसीलिए न बुलाती है तू ? समझती होगी मैं यह सब समझता नहीं। हूँ····

भारती—यह कहने को हो सही, आपने कमरे में पैर तो रखा।

कुरुप—क्यों बुलाया था उसे ?

भारती—नाराज़ न हूजिये। यह दवा ज़रा उढ़ेल कर दे दीजिये।

कुरुप—हाथ नहीं पहुँच सकता क्या ? उठाकर पी नहीं सकती ? हाथ टूट गये हैं क्या ?

[वासन्ती रंगमंच पर वापस आती है। उनकी बातचीत सुनती है। नाणी उसे खत लाकर देती है। वासन्ती उसे चुपचाप चले जाने का संकेत करती है। नाणी जाती है। वासन्ती खत पढ़ती जाती है और अन्दर की बातें भी सुनती जाती है]

कुरुप—एक बार कहे देता हूँ, जिन कामों में तेरा वास्ता नहीं, उनमें टाँग मत अड़ा। नहीं तो मेरा रूप पलट जाएगा।

भारती—ज़रा बैठिये यहाँ। मेरे पास थोड़ी देर बैठ भी नहीं सकते ?

मैं ऐसी घिनौनी हो गयी हूँ क्या ?

कुरुप—न बैटने की ही अब कमी है। बैठूँ कैसे ! हमेशा मन-मुटाव, सूई-सी छिदनेवाली बातें !

भारती—अच्छा. अब मैं कुछ न कहूँगी। ज़रा यहाँ बैठिये तो सही !

कुरुप—हुँ.....क्या चाहिए।

[भारती सिसक-सिसक कर रोती है]

[इधर रंगमंच पर वासन्ती गौर से सुन रही है। पंकज एक खमड़े में कुछ अंगारे लाता है। उसमें से धूप और लोबान का धुआँ उठ रहा है। कुछ क्षणों के बाद ही वासन्ती उसे देख पाती है]

वासन्ती—पंका, क्या तेरे बहुत ज़्यादा दर्द हुआ।

पंकज—('नहीं' के अर्थ में सिर हिलाता है।)

वासन्ती—तूने मेरी चारपाई पर फूल क्यों रखे ? मुझे फूलों की सेज किस लिए ? पंका, मैं तो शूलों पर सोने के लिए जन्मी हूँ।

पंकज—(भीगी आँखों से वासन्ती की ओर देखकर 'नहीं' के अर्थ में सिर हिलाता है।

वासन्ती—यह आग अन्दर ले जा कमरे में।

कुरुप—(करुणा दिखाते हुए) भारती रो मत ! (भारती सिसकती है) यह आँसू पोंछ ले।.... .....(ज़रा क्रोध में आकर) कह जो रहा हूँ—मत रो। (उत्तेजित होकर) तो लो अब रोती रहो, मैं चला !

[कुरुप रंगमंच पर चला आता है]

कुरुप—अरे यह आग-धुआँ किस लिए।

वासन्ती—डाक्टर ने कमरे में धूमनी देने को कहा था। हवा साफ़ रखने के लिए कहा होगा !

पंकज—(संकेत से पूछता है—'ले जाऊँ क्या ?')

कुरुप—तो फिर ले जा। हवा ही साफ़ हो जाए। अरे, धुआँ ज़्यादा न हो जाए, दम घुट जाएगा। ध्यान रखना।

वासन्ती—केवल वहीं नहीं·····सब कहीं धुआँ करना है। मैं भी आयी।

[पंकज जाता है। वासन्ती भी जाने को उद्यत होती है।]

कुरुप—वासन्ती!

(वासन्ती जाते-जाते रुक जाती है।)

कुरुप—(कुछ सोचकर) नहीं, कुछ नहीं, चली जा।

[यवनिका-पतन]

●

दूसरा दृश्य

[रंगमंच-संकेत :

बालचन्द्रन् का लोंज, आलस्य और लापरवाही दिखाने वाली अस्त-व्यस्त सज्जा। दो-एक मेज़, स्टूल, कोट टाँगने की खूँटी, रद्दी की टोकरी। दीवार पर अभिनेत्रियों के चित्र आदि। मेजपोश बिछा है।]

[यवनिका उठती है। बालचन्द्रन् और वासन्ती बातें करते नज़र आते हैं। वासन्ती के हाथ में किताबें हैं, जिससे पता चलता है कि वह कालेज को निकली है।]

वासन्ती—आप को मालूम है, मैंने ऐसा साहस क्यों किया ?

बालचन्द्रन्—खत तो लिख भेजा था। पर मुझे विश्वास नहीं था कि वासन्ती जी आएंगी। कब तक यों खतों से बातचीत करते रहें, यह आपने सोचा क्या ?

वासन्ती—कुछ नहीं सोचा मैंने। सोचती तो यहाँ लोंज में आने की हिम्मत ही न होती।

बालचन्द्रन्—कहीं एकान्त में बैठकर कुछ बातें करें। कालेज में यह कहाँ होता ? सड़क पर भी नहीं। अपने घर आने को तुमने मना किया था। और कोई उपाय न देखा। इसलिए सोचा क्यों न यहीं आ जाओ।

वासन्ती—और कोई उपाय न दिखा, इसीलिए मैं भी इस रक्षा-गृह में चली आयी।

बालचन्द्रन्—चाहे जितनी देर यहाँ बैठकर मन की बातें कर सकते हैं।

वासन्ती—मदन और वेणु भी तो यहीं रहते हैं न ?

बालचन्द्रन्—दोनों पहले ही कालेज चले गये हैं। एक छोटा नौकर और यहाँ रहता है। उसे भी मैंने तुम्हारे आने पर समुद्र-किनारे भेज दिया है।

वासन्ती—समुद्र किनारे ? क्यों, ऐसी कड़ी धूप में।

बालचन्द्रन्—एक खत दिया है। उधर एक वकील की खोज मे भटकता होगा, जिसका जन्म भी नहीं हुआ है।

वासन्ती—वाह !.....तब दोपहर को कहाँ खाओगे !

बालचन्द्रन्—उसके यहाँ रहने पर यों कैसे बात कर सकते ? वेणु तो सीधा है वह राजी किया जा सकता है। पर मदन तो पूरा पेटू है। आज कम से कम बीस ईडलियाँ मगा कर खिलानी पड़ेंगी।

वासन्ती—हे भगवान..... कोई घर जाकर कह दे मैं यहाँ हूँ तो.....।

बालचन्द्रन्—हाँ और किसी ने नही, भगवान् ने तुम्हें अवश्य देखा है, पर यह बताये जाने का कष्ट वह न उठायेगा।

वासन्ती—किन्तु उस घर में तो भगवान भी पैर न रखेगा।

बालचन्द्रन्—फिर भी पूरा प्रबन्ध है। वेलु को खड़ा किया है, कोई आता हो तो हमें तुरन्त सूचना दगा। अब जो कुछ कहना है, बे-झिझक कह सकते है।

वासन्ती—कहिए, आपको क्या कहना है ?

बालचन्द्रन्—सच तो यह है, मुझे कुछ कहना-वहना नही है।

वासन्ती—आपको तो हर समय मजाक सूझता है। बात कितनी नाजुक है। ठीक ठीक समझते ही नहीं। इसीलिए इसे भी साधारण बात समझते हैं।

बालचन्द्रन्—(मजाक छोड़कर) क्या मैं वासन्ती के विषय में कुछ भी जानता नहीं।

वासन्ती—आप जानते हैं। एक लड़की है। किताबें लेकर रोज़ घोड़ा-गाड़ी में आया करती है। यही न ? यही सब आप जानते हैं न ?

बालचन्द्रन्—यों तो कितनी आती हैं। किसी पर मेरी दृष्टि न गयी, न उन्हें ख़त लिखा, न उनके पीछे फिरा, उनसे बोलना भी न चाहा, देखने पर मुँह ही फेर लेता हूँ।

वासन्ती—मेरी भी कहानी ऐसी है कि शायद आप मुँह फेर लें। शायद बातें भी न करें। डर है कि शायद आप नफ़रत करने लगें।

बालचन्द्रन्—वासन्ती जी धीरे-धीरे समझेंगी कि उनका यह डर असंगत है। (दृढ़ता से) तुम्हें मैं धोखा न दूँगा।

वासन्ती—क्षमा करना ! अपने विषय में कुछ और बातें भी आपको बता देना चाहती हूँ। मेरा ख़ानदान नहीं, कोई प्रतिष्ठित और सम्माननीय व्यक्ति मेरा सम्बन्धी नहीं। मेरे पिता ने किसी दुश्मन का गला काट डाला। उसका ख़ून भी न सूखा था कि उसी छुरी से दुश्मनों ने उन्हें भी मार डाला। माँ है नहीं। सब मिलाकर एक बहन है, उसी पर मैंने अपने दिन काटे, और आज भी काट रही हूँ। जन्म एक फूँस की झोंपड़ी में हुआ। पालन-पोषण गलियों में। आज दो-मंजिले महल में रहती हूँ। बहन अच्छा गा लेती थी। सौन्दर्य में उसमे अप्सरा भी लज्जित होती थी। एक धनी मोहित हुआ। बहन से शादी की, और इस प्रकार एक दिन सवेरे-सवेरे हमने अप्रत्याशित रूप से अपने आप को महल में पाया। आज सात बर्ष बीत गये उस दिन को। देखिए ये गहने जो मैं पहने हूँ, उनके ही हैं। वह ही मेरे संरक्षक हैं। पढ़ाया भी उन्होंने ही है। आप तो यह सब नहीं जानते। अब जान कर जो मर्ज़ी हो, कीजिये।

बालचन्द्रन्—(मुक्ति की साँस लेकर) अफ़सोस ! क्या आप ने सोचा

है, यह लम्बी-चौड़ी कहानी सुन कर मैं वासन्ती से घृणा करूँगा। अजी, इस का पूरा रूप मुझे पहले ही मालूम है। क्या यह आपका ही कसूर है कि आपने झोंपड़ी में जन्म लिया ? पिता की भूल की ज़िम्मेदार आप कैसे हो सकती हैं ? रही बचपन की कठिनाइयाँ ! उनको लेकर मैं वासन्ती से घृणा करने बैठूँगा ? छी-छी, किसी तितली के पीछे दौड़ने वाला ही आपने समझा मुझे ?

वासन्ती—नहीं, बात ऐसी नहीं है। ऐसा ज़रा भास भी होता तो आप वासन्ती को यहाँ खड़ा न पाते। फिर भी सब कुछ·····बिना कुछ भी छिपाये कह देने की मेरी इच्छा थी।

बालचन्द्रन्—तो एक बात और भी जोड़ने को रह गयी है ? वस्तुतः वासन्ती ने कहानी पूरी नहीं कही। तो बाकी मैं कह दूँ ? वासन्ती आज वहाँ उस नरक में मानसिक यातना से तिल-तिल करके जल रही है। उसका जीवन काँपते बीतता है, जैसे पतली तारों से बँधी पुल पर से गुज़र रही हो।

वासन्ती—हाय किसने बताया ? आपको कैसे सब·····

बालचन्द्रन्—रंगीन साड़ियों और चमकते गहनों को देखकर मैं प्रेम की याचना करने थोड़े आया हूँ। जो जो जानना चाहिए, अच्छी तरह जान लिया है। वहाँ जो होने की संभावना है, उसे भी अच्छी तरह समझ रखा है। हाँ·····फिर अपनी बात ! अपने हितैषियों और खानदान की बात मैं पहले ही तुम्हें लिख चुका हूँ।

वासन्ती—हाँ, मैं जानती हूँ। उस बड़े कुल के योग्य नहीं हूँ मैं। इसलिए अपनी राम-कहानी आपको सुनायी। मुझे विश्वास ही नहीं होता कि मेरा ऐसा भाग्य भी हो सकता है। बित्ता भर ज़मीन अपनी नहीं, पैसा पास नहीं। दूसरों की दया की भीख

मांग कर जीती हूँ। अमर-बेल देखी होगी, ऐसी ही है मेरी ज़िन्दगी !

बालचन्द्रन्—मैं धन और आभूषणों में नहीं बिक जाना चाहता। वृक्ष की सी छाया दे सके, ऐसा हृदय मुझे चाहिए। और मुझे दृढ़ विश्वास है कि वासन्ती इसमें पूर्ण सम्पन्न हैं। बस, एक बात और ! मेरे बड़े खानदान और ओहदेदार कुटुम्बियों से आशा तुम्हें भी न रखनी चाहिए। मात्र मैं ही हूँ, मेरा ही विश्वास होना चाहिए। मैं भविष्य के विषय में कुछ नहीं कह सकता। शायद वे नाराज़ हों, मुझे अनेक प्रकार से रोकें। उन से टकरा कर बहुत सी आकर्षक और मोहक वस्तुएँ यथार्थ की आँच में भक् हो जाएँ ?

वासन्ती—क्या आपके रिश्तेदारों को यह सब मालूम है ?

बालचन्द्रन्—नहीं, जानने पर ये सब बातें हो सकती हैं। पहले से ही सब देख-भाल लेना ठीक है। तुम्हें विदित हो, मैं तुम्हें ऐसे जीवन को साथी बनाना चाहता हूँ, जिसमें क्लेश और कठिनाइयों की ही भरमार है।

वासन्ती—वाह ! क्लेश ! खूब रही। क्लेश क्या मेरे लिए कोई नयी वस्तु है ? मेरा जीवन क्लेशों में ही सदैव नाचता रहा है।

बालचन्द्रन्—तो सब ठीक है ! हम एक होकर जीवन-रण में आगे बढ़ेंगे। सुख-दुख में मन का एक साथी ! कितना आश्वासन होता है इससे।

वासन्ती—(**पास आकर आँखों में देखकर**) सच कहिए ! आप मन की बात कहते हैं।

बालचन्द्रन्—वासन्ती.....

वासन्ती—मैं विश्वास करूँ, आप मेरी रक्षा करेंगे।

बालचन्द्रन—निश्चय, इस प्रकार पूछ कर मेरी हँसी उड़ाती हो क्या ? मैं डरती बहुत हूँ, इसलिए ऐसे पूछा।

वासन्ती—लोगों से मेरा कैसा व्यवहार होना चाहिए, मैं नहीं जानती। मेरा हृदय पहली बार किसी का ग़ुलाम हुआ है। कहानियों में जीवन जितना मधुर पढ़ते हैं, वास्तव में वह उतना मधुर नहीं होता। मैं हृदय से आप पर विश्वास करती हूँ। आप भी करें।

बालचन्द्रन्—हमारे जीवन का यह क्षण धन्य है। हमारे जीवन का नया अध्याय आरम्भ होने वाला है। हाँ···कुछ दिनों बाद परीक्षा होगी। मेरा यह अन्तिम वर्ष है। सफल हों या न हों, जो भी हो, मुझे यहाँ रहने का काम न रह जाएगा। मुझे अब क्या करना है ?

वासन्ती—मैं क्या बताऊँ ?

बालचन्द्रन्—वासन्ती तो पढ़ती रहेंगी न ?

वासन्ती—कुछ निश्चित नहीं।

बालचन्द्रन—वासन्ती के जीजा जी के पास किस तरह पहुँचना चाहिए।

वासन्ती—यह मैं क्या जानूँ ?

बालचन्द्रन—तो मैं सीधे उन से मिलकर कहूँगा। गली से तुम्हें लाकर महल में बसाने की इन्सानियत यदि उनमें है, तो वह मेरे हृदय को भी समझेंगे।

वासन्ती—क्या जानूँ ! बहते तुषार-पुंज का ऊपर तल ही दिखता है, शेष सब नीचे है। आँखों से परे जीजा जी ऐसे ही हैं। जीजा जी कैसे आदमी हैं मैं अब तक उन्हें समझ नहीं पायी। पर एक बात जानती हूँ, मुझे उनसे डर लगता है, और वह नित्य बढ़ता ही जाता है।

बालचन्द्रन्—और एक उपाय है। वहाँ जो आते हैं वह डाक्टर हैं न ?

वासन्ती—डाक्टर मेनोन ! आपके रिश्तेदार हैं, हैं न !

बालचन्द्रन्—हाँ, ऐसा दूसरा आदमी न मिलेगा। उनसे बढ़कर मुझे प्यार करने वाला और कोई नहीं। उन्हीं से तुम्हारे जीजा जी से यह कहने के लिए कहूँगा। सम्मान्य व्यक्ति हैं, सो उनका ही कहना ठीक होगा, है न।

वासन्ती—मुझे कुछ नहीं सूझता, किस भरोसे मैं आपको विश्वास दिलाऊँ ?

बालचन्द्रन्—वासन्ती, तुम हिम्मत मत हारो। उन्होंने वासन्ती की हर इच्छा पूरी की है। इसका एकमात्र लक्ष्य वासन्ती का भविष्य उज्ज्वल करना·····

वासन्ती—(सोचकर, दृढ़तापूर्वक) कोई मनुष्य पशुओं को पालता है। प्रेम से खिलाता-पिलाता है, आखिर एक दिन उन्हें मार डालता है और खा जाता है, इसीलिए न ?

बालचन्द्रन्—वासन्ती·····

वासन्ती—मैं अब जाती हूँ·····

बालचन्द्रन्—व्यर्थ ही भयभीत होकर रहती हो। क्यों न मैं डाक्टर मेनोन को वहाँ भेजूँ। मेरा अन्तःकरण कहता है, मैं सफल हूँगा। अब मुझे चैन तभी मिलेगा जब यह पता चले कि वासन्ती सन्तोषपूर्वक विदा हो रही हैं।

वासन्ती—(साश्रु नयन) मैं पूर्ण सन्तुष्ट होकर जा रही हूँ। आज मुझे एक ऐसे मिले हैं जो हर प्रकार से मेरे सहायक होंगे। अधीर होने पर जिनको नाम लेकर पुकार सकती हूँ। जिनकी याद से मुझे दुःख-दर्दों में सान्त्वना मिलेगी।

बालचन्द्रन्—तो फिर·····

वासन्ती—फिर क्या·····

बालचन्द्रन्—ज़रा हँसोगी नहीं ?

[वेलु का प्रवेश]

वेलु—बश, बश, छोटी माँ, विजयम्मा एक गाड़ी में इधर होकर गयी है। हम छिप गया। उसका वापस आने से पहलू बदल जावेगा। वह छोटी माँ को देखेगा, बड़ा घोटाला मच जावेगा।

वासन्ती—हैं, तो उनके लौटने से पहले ही चलें।

वेलु—छोटी अम्मा इतनी देर यहाँ बैठा, चाय-वाय भी नहीं पिया। सब बेकार, बेकार ! धत् तेरे की।

बालचन्द्रन्—चाय जो बनाता वह तो ईश्वरपिल्ले नामक वकील की तलाश समुद्र किनारे कर रहा है।

वेलु—ओ हाँ, वो ही न, जो रोज हमारी गाड़ी पर आता जाता है। एक रुपया उन पर अब भी बाकी पड़ा है।

वासन्ती—मिलेगा वह रुपया, ज़रूर मिलेगा। (**बालचन्द्रन् से**) बेचारे भद्रन् और वेणु को भूखा मत मारिये। कुछ न कुछ मगवा रखिये होटल से।

बालचन्द्रन्—मँगवाने को कौन बैठा है यहाँ। मुझे स्वयं बर्तन उठाकर जाना पड़ेगा। वेलु को इनाम मिलेगा, सुना ?

वेलु—हो-हो, आपका क्या इनाम, क्या देंगा आप ? यह छोटी मा चाहेंगा तो कुछ मिलेंगा।

बालचन्द्रन्— सो क्या ?

वासन्ती—वह ?····वहाँ की नौकरानी और वेलु में·····

वेलु—मगर आप लोग का जैसा हमारा सड़क नहीं है—टेढ़ा-मेढ़ा। साफ़ है, साफ़। मेथन रोड का सा तारकोल का पक्का सड़क। घोड़ी सरपट दौड़ता है।

बालचन्द्रन्—अरे ठीक कहता है तू। जो हो, वासन्ती भूलना मत, इनाम इसको दे देना।

वासन्ती—इसको मेरी मदद की ज़रूरत नहीं। वह उसे पहले ही हाथ में कर चुका है।

वेलु—छी:-छी:, यह सब कुछ नहीं बाबू सा'ब ! अब भी नन्हीं बच्ची की तरह मचलती है।

वासन्ती—चल साँझ हुई, चलें।

बालचन्द्रन्—अब फिर कब .....

वासन्ती—कौन जाने ?

वेलु—हुँ, पूछता है फिर कब ? इस दफ़ा का किराया तक दिया नहीं ... अरर्र् छोटी मा, वेलु ने हँसी किया था।

[दोनों जाते हैं। बालचन्द्रन् एक गाना गुनगुनाता हुआ मेज़ के पास आता है। मेज़ के नीचे से एक हाथ बढ़ता है और पैर पकड़ लेता है। 'हाऽऽऽ' पुकारता बालचन्द्रन् उछल जाता है। वेणु नीचे से उठ खड़ा होता है।]

बालचन्द्रन्—(परेशानी से) हें—ऽऽ—यह क्या, वेणु ?

वेणु—(हाथ जोड़कर) भाई मारना मत। सुना....सब पूरा-पूरा सुना.... काँग्रेचुलेशन्स !!

बालचन्द्रन्—हुँ, (मुँह बिगाड़कर) कांग्रेचुलेशन्स ! इतनी भी सभ्यता नहीं,.....यही तुम्हारी कल्चर है। मोस्ट डिसग्रेसफुल !

वेणु—माफ़ करो भाई।

[कोने में पड़ी बड़ी अलमारी के पीछे से मुँह-बाजे की आवाज़ सुनायी पड़ती है। बालचन्द्रन् परेशान होकर पास जाता है। भद्रन् 'पी-पी-पी' करता हुआ बाहर निकल आता है।]

बालचन्द्रन्—ऐ बन्द कर, बदमाश कहीं का। ताड़ की तरह ऊँचा हो गया, फिर भी छिपकर सुनने की आदत न गयी। शर्म भी नहीं आती।

भद्रन्—सुनो, सुनो। यह शादी के बैण्ड का गाना है। कैसा मीठा लगता है। फिर भी भई, हमसे इतने दिन तक यह छिपा कैसे रखी ?

वेणु—हमारे जानने में कुछ नुकसान नहीं, भाई ! बढ़ चलो हिम्मत से।

बालचन्द्रन्—फिर भी तुम ऐसे छँटे जालसाज ! (सोचकर) छीः-छीः—कैसा गोलमाल ! नहीं सह सकता (इधर-उधर टहलता है।)

भद्रन्—मत घबराओ मित्र ! सब कल्याण हो जाएगा। इतने पर भी मुझे दुःख इस बात का है कि तुमने मुझे पेटू बनाया और अपनी श्रीमती जी से कहा कि मैं बीसों ईडलियाँ खाता हूँ।

[बालचन्द्रन् गम्भीरता छोड़कर हँस पड़ता है]

बालचन्द्रन्—और इतनी देर तक यह चोर सब सुनकर भी उस अलमारी के पीछे दम साधे कैसे खड़ा रहा। दुर्भाग्य से कोई आवाज़ निकल गयी होती तो वह लड़की यहीं बेहोश होकर गिर पड़ती।

चन्द्रन्—अरे, यही सोचकर तो मैं खाँसी तक को भी रोके रहा।

भद्रन्—आज भई, भूखों मरना होगा, क्योंकि हमारा नौकर तो·····

वेणु—समुद्र पर ईश्वरपिल्ले नामक वकील की तलाश में गया है, यही न !

['बाबू साहिब' आवाज़ छत पर से सुनायी पड़ती है। सब ऊपर देखते हैं।]

[छत के ऊपर स—मैं यहाँ हूँ, बाबू साहब ! सीढ़ी देने पर ही उतर सकता हूँ ।]

'अरे' [तीनों तालियाँ बजाकर हँसते हैं ।]

बालचन्द्रन्—हे भगवान् ! अब और कौन है जो नहीं जानता !

[यवनिका-पतन]

●

*

तीसरा दृश्य

[रंगमंच-संकेत :

विजयम्मा का घर। स्वागत-कक्ष। विजयम्मा खिड़की के लिए परदा सी रही है। कमरे में रेडियो बज रहा है। बीच-बीच में वह कान देकर गाना सुन लेती है। गाना समाप्त होने पर 'आज का बाज़ार-भाव सुनिए' सुनायी देता है और मूँग, उड़द, दाल, चावल, काली मिर्च, कत्था, हल्दी, सुपारी, अदरक आदि के भाव सुनायी देते हैं। विजयम्मा रेडियो बन्द कर देती है। नाणी एक ख़त लेकर आती है।]

विजयम्मा—नाणी है। कैसे आयी ?

नाणी—छोटी मां वासन्ती ने ख़त दिया है। (**ख़त देती है**)

विजयम्मा—अरी यह भी कहा होगा कि तू किसी को मत दिखाना।

नाणी—यह भी कहा था। मैं अपनी आँगी में ही रख कर लायी हूँ।

विजयम्मा—पैदल आयी है या गाड़ी में ?

नाणी—(**आँख गड़ा कर**) छोटी माँ ने यह सवाल कुछ भेद से ही पूछा है।

विजयम्मा—(**ख़त पढ़ती हुई**) कुछ भेद नहीं है री, सब कहते हैं तेरे अपनी एक गाड़ी है।

नाणी—यों कहते रहने से ही वह बन गयी है। मैं झूठ क्यों बोलूंगी, झूठी या सच्ची बात तो यह है कि मैं ज़बरदस्ती फँस गयी हूँ। लेकिन वे भी जाने कैसे हैं ? काली मैया की साच्छी छोटी माँ, मैं ने तो बहुत दिन से उन्हें देखा तक नहीं।

*

विजयम्मा—तू किसी की साक्षी मत दे। दो-तीन दिन हुए जब मैं उधर आयी थी तो तुम दोनों को फाटक पर खड़े बातें करते देखा था।

नाणी—क्या! बस दो-तीन दिन ही बीते?.....फिर उसके बाद तो अपनी आखों उसकी छाया तक न देखी।

विजयम्मा—पर कोई कहता था कि गाड़ी चलाकर जो वह कमाता है, तू उससे सब ऐंठ लेती है।

नाणी—क्या? उई काली मैया! कौन कहता है, कहते-कहते जीभ घिस गई आज तक, तब कहीं चोली को बस एक हाथ लाल कपड़ा हाथ लगा है.....हाँ, कल कुछ मूँगफली और चने भी लाये थे।

विजयम्मा—तो कल भी आया था वह?

नाणी—हाँ, है तो ठीक, फिर उसके बाद तो परछाईं भी न देखी।

विजयम्मा—अरी, तू मामूली नहीं अब तक कितनी बार झूठ बोला, कितनी बार साक्षी दी।

नाणी—कैसी है छोटी मा, क्या मैं झूठ बोली। छोटी मा कुरेद-कुरेद कर पूछ तो क्या कहूँ।

विजयम्मा—क्या आज तू वेलु से सड़क पर नहीं मिली? सच बोल।

नाणी—तो सब खोल दूं। मुझे पता नहीं कि सब कुछ जानते हुए मा मुझसे पूछ रही हैं। (**ब्रीड़ा-पूर्वक**) मैं उनकी पँचकल्याणी गाड़ी पर ही आयी हूँ। रास्ते में मिल गये। चढ़ने को कहा। मैं क्या करती। सड़क पर लोग आ-जा रहे थे। न चढ़ती तो वह क्या कहते? शर्म के मारे चुपचाप गाड़ी पर चढ़ बैठी। सच कहती हूँ—सिर से पैर तक कपड़ा लपेटे बैठी रही। पर एक बात है छोटी मा, गाड़ी चलाने में वह एक ही है। स र र र—टिट् टिट् टिट्—कहा नहीं

कि घोड़ी उड़ने लगी। जानें क्या जादू है!

विजम्यम्मा—हाँ, री हाँ। तुझे तो उड़ता ही लगेगा। तेरा इसमें कुछ कसूर नहीं। तब वह कहाँ गया? तुझे वहाँ उतार कर चला गया क्या?

नाणी—यह भी कुछ पूछना है छोटी मा!·····क्या वह ऐसे धूल झाड़ कर जा सकता है। (**अलस स्वर में**) उधर सड़क या किसी दूकान पर खड़े होंगे। कौन देखे?

विजयम्मा—ओ-हो, तो ·····यह बात है। हुँ,····· जा, जाकर वासन्ती से कहना, आवश्यक काम करूँगी। सुना? क्या कहेगी?

नाणी—आवश्यक काम करूँगी।

विजयम्मा—कौन?

नाणी—मैं!

विजयम्मा—तू?

नाणी—नहीं, मैं ऐसा कहूँगी।

विजयम्मा—हुँ·····जल्दी जा·····ज़रा ठहर····· भारती की हालत कैसी है?

नाणी—हालत? वैसी है। दवा नहीं पीती। हमेशा सब पर गुस्सा।

विजयम्मा—गुस्सा सब पर?

नाणी—कल वासन्ती मा ने दवा दी, तो गिलास उनके मुँह पर दे मारा। कहती थीं—यह विष है! हाय-हाय! फिर कुछ देर बाद वासन्ती मा को खाट पर अपने पास बिठाकर लिपट कर रोने लगीं। आप देखें तो परेशान हो उठें।

विजयम्मा—बेचारी!

नाणी—कभी वासन्ती मा से कहेंगी। यहीं बैठी रहो, कमरे से बाहर मत जाओ। फिर अपने आप कहेंगी–तू यह घर छोड़ कर चली जा। छोटी माँ, मुझे लगता है यह बीमारी नहीं। किसी की नज़र लगी है, या फिर किसी ने झपट लिया है–भूत ने, प्रेत ने या चुड़ैल ने।

विजयम्मा—विचित्र लग्न है। कितने सुख से जी रहे थे।

नाणी—होय्, नाच-गाना ! हाय, कुछ दिन पहले घी दिये जलते थे। अब तो जैसे सारा घर सो गया।

विजयम्मा—बच्ची कैसी है ?

नाणी—उसके बारे में सोचो तो छाती फटेगी। 'अम्मा-अम्मा' पुकारती हाथ बढ़ाती है। मा उसे उठा नहीं सकती। बेचारी बच्ची—मुरझाया फूल !

विजयम्मा—उसकी देखभाल अच्छी तरह करना। यह काम तेरा है, याद रखना, सुना !

नाणी—छोटी मा यह भी क्या कहने की·····

(वेलु धीरे-धीरे झाँकता है)

विजयम्मा—कौन है ?

वेलु—वेलु है छोटी मा। यहाँ आयी तो फिर इसका कुछ पता न लगा। यह देखने कि क्या·····

नाणी—ज़रा देर न देखी तो क्या हो जाएगा ?·····जब मर्ज़ी होगी, आऊँगी,·····क्या जल्दी है। नहीं तो ले जाओ गाड़ी····· उसकी ही ऐंठ है। भगवान् ने पैर दिये हैं, उसके बल जाऊँगी।

वेलु—लौंडिया, इतनी बढ़े मत।·····छोटी मा बैठी है, इससे गम खाता हूँ, जरा बाहर तो चल·····

विजयम्मा—नहीं, नहीं। झगड़ा मत बढ़ाओ। भीतर जाकर दोनों कुछ

खालो, और फिर जल्दी जाओ। (सिले कपड़ों को बाँधकर नाणी के हाथ में देकर) अरी, वासन्ती को देना यह, और कहना बाकी मैं खुद ले आऊँगी।

नाणी —जी अच्छा, (जाते-जाते वेलु से) ऐंठ तो ऐसी है जैसे कि बस····· ·····ओय् होय् !

(दोनों जाते हैं)

[विजयम्मा फिर मशीन चलाती है। भीतर से शेखरन् नायर आते हैं। लगता है, अभी नहा कर आये हैं।]

शेखर—वह रसनादि-चूर्ण तो किसी काम का नहीं। (जिधर नाणी गयी है, उधर देखकर) अभी जो गयी, कौन थी ?

विजयम्मा—(सिलाई में ध्यान दिये) नाणी है, नाणी।

शेखर—कौन नाणी ?

विजयम्मा—वहाँ की नौकरानी·····नाणी।

शेखर—(विनोद के स्वर मे) हुँ,·····आया समझ में !

विजयम्मा—क्या ?·····नहीं आया ?

शेखर—अरी, यदि तू 'वहाँ' की नाणी कहे तो क्या समझूँ मैं ?

विजयम्मा – सौ बार देखा है·····नाणी वही है, जिससे वेलु शादी करेगा।

शेखर—और लो, मैं एक को जानना चाहता था, अब दो हो गये। नाणी और वेलु—खूँटी और रस्सा !

विजयम्मा—वह रसनादि-चूर्ण थोड़ा और सिर पर मलिए, तब बुद्धि में आयेगा। क्या गड़बड़ है ! जैसे कुरुप भाई के घर की नाणी और गाड़ीवान् वेलु को जानते ही न हों।

शेखर—यह सब पहले क्यों नहीं कहा ? अरी, नागी और वेलु भी क्या गान्धी और नेहरू हैं कि नाम लिया नहीं और जान गये। क्या ले गयी वह ?

विजयम्मा—खिड़की और दरवाजों के परदे हैं। वासन्ती ने कपड़ा दे भेजा था। यहाँ मशीन भी है·····

शेखर—मशीन भी है, तू बेकार भी बैठती है। चलो एक परोपकार सही ! परदे इसीलिए बाँधते हैं न कि भीतर की बात बाहर न दिखे, हैं न ?

विजयम्मा—परदे तो सभी घरों में होते हैं, और यहां भी हैं।

शेखर—ठीक है, पर इन परदों से कोई फ़ायदा नहीं। 'घर में जो रहस्य है, बाज़ार में उसका गीत'—कहावत है। कुरुप के घर में सब कहीं परदे हैं। घर क्या है, नाटक-घर है। अब इन परदों की और क्या ज़रूरत पड़ गयी।

विजयम्मा—मैं क्या जानूँ ? शायद पहले वाले परदे फट गये होंगे, या फीके पड़ गये होंगे।

शेखर—ज़रा रंग फीका पड़े तो क्या बदल ही देना चाहिए। हाँ, पैसा है, कमी क्या है ? किसी-किसी का तो हँसना भी एक परदा है।

विजयम्मा—हँसी ही क्यों ? कई मनुष्य तो स्वयं ही एक तरह के परदे होते हैं।

शेखर—मुझे यह नहीं सूझा था। शायद मैं भी तुम्हारे सौन्दर्य को ढकने वाला परदा ही हूँ। (ख़त देखकर) यह ख़त किसका है ?

विजयम्मा—(तत्काल उठ कर) ओह, कपड़े सीते-सीते भूल ही गयी कि·····

शेखर—ओ हो, जैसे तू कभी कुछ भूलती ही नहीं ! क्या है उसमें ? तो कोई तार-वार है क्या ?

विजयम्मा—तार और सूत कुछ नहीं। कुरुप भाई अभी यहां आएंगे।

शेखर—बस इसके लिए खत भेजा। स्वागत में आतिशबाज़ी करनी है क्या? या अपनी 'पोज़ीशन' की रक्षा के लिए सिल्क-विल्क का कुरता पहनना है? हुँ·····आने दे!

विजयम्मा—नहीं, लीजिए यह खत। इसमें सब लिखा है। (खत पढ़ते हैं)

विजयम्मा—वासन्ती का है।

शेखर—मालूम हुआ। (पढ़ना जारी रखते हैं)

विजयम्मा—उसे बम्बई में किसी कम्पनी में नौकरी मिली है। एक हफ़्ते में काम पर पहुँचना है।

शेखर—(खत मोड़कर) तो फिर तू ही कह, खत नहीं पढ़ता।

विजयम्मा—अच्छा, मैं चुप हूँ। पढ़िए बाबा, पढ़िए! (हाथ बांध कर खड़ी हो जाती है)

शेखर—(फिर पढ़ता है) हुँ, (खत मोड़ कर देता है) रूँठ गयी?

विजयम्मा—पढ़ चुके। अब बोलूँ?

शेखर—हाँ बोलो·····इसमें हमें क्या करना है?

विजयम्मा—तब उसमें और क्या है? खत पढ़ा मगर समझे क्या? धूल!

शेखर—हुँ।

विजयम्मा—हुँ क्या?

शेखर—कुरुप के आने पर·····।

विजयम्मा—हाँ, यहाँ आने पर?

शेखर—(चिड़चिड़ा कर) कुरुप के आने पर ही जो कहना है, कहूँगा, तुझसे नहीं। हुँ, ऐसा भी कहीं होता है?

विजयम्मा—उसे जाने की अनुमति दिलवा दीजिए! ज़ोर देकर कहिए।

शेखर—अब जितना ज़ोर है, काफ़ी न हो तो दण्ड-बैठक लगा कर कहूँगा।

विजयम्मा—वासन्ती ने ख़त लिखा था—यह मत कहिए।

शेखर—अरे, तो अब सब ही सिखा देगी। भई, बड़ी गड़बड़ है। मैं जो चाहता हूँ, कह लूँगा।

विजयम्मा—(हँसती हुई) मैं जानती हूँ, ऐसा कुछ न कहेंगे, जिससे····

शेखर—(गंभीरता से उसकी ओर देखता रहता है, फिर धीरे धीरे हँसने लगता है) अरी, तू ज़रा वह दशमूल का काढ़ा तो ले आ। पेट में वायु का गोला उठा है। एक धान्वन्तरम् गोली भी।

विजयम्मा—वायु! ऐं, यही तो सारी बात है, जिससे इतने नाराज़ हुए जाते हो। (पार्श्व में देखकर) कोई आता है, लगता है कुरुप भाई ही आते हैं। (जाती है)

शेखर—तो इधर आ ही गये। आइए—आइए·····वहाँ खड़े-खड़े क्या देखते है?

(कुरुप का प्रवेश, वेश से लगता है सवारी से आया है।)

कुरुप—ज़रा भाई साहब की फुलवारी देख रहा था।

शेखर—ओ, क्या फुलवारी है, फुलवारी का नाम बिगाड़ना है। मेरी ग़ैरहाज़िरी में सब उजड़ गयी।

कुरुप—फूल या फिर फल देने वाले पौधे ही लगाइये। बाकी सब उखाड़ फेंकिये।

शेखर—इसमें कुछ छाया देने वाले भी हैं। ख़ैर! इधर कैसे आज? रास्ता भूल गये या यहीं आये थे?

कुरुप—आप भाई सा'ब, ऐसा ही कहेंगे। पर मुझे जल्दी ही लौटना है। बस खड़े-खड़े वचन पूरा करने आया था। सचमुच घर छोड़

कर आजकल कहीं नहीं जाने पाता। मेरी कठिनाई आप जानते ही हैं।

शेखर—हाँ, भारती ने मुझे सब बताया था। भारती की तबीयत सुधरी नहीं क्या ?

कुरुप—पहले से कुछ ठीक है, यही कहना चाहिए। आपको मालूम है, मैं कितने दिनों से सोया नहीं हूँ।

शेखर—इस तबादले के कारण मुझे दम मारने का भी समय नहीं मिला। विजया से उसकी देखभाल कर आने को कहता रहता हूँ।

कुरुप—हैं-हैं, नहीं, नहीं, । मैं यों किसी को तकलीफ़ नहीं देना चाहता। मेरा भी स्वार्थ है। मेरे पास बैठने से ही उसे तृप्ति मिलती है। एक लड़की जो कहीं की न रही। मेरा विश्वास करके चली आयी। यह सब कैसे भूलूँ ? फिर मैं तो निरा जंगली ठहरा, मेरे सब अन्यायों को वह बेचारी आज तक सहती रही है।

शेखर—कुरुप ही उसका ईश्वर है न ?

कुरुप—यही बंधन उसे दुर्बल बना देता है। स्नेह के हम सब ग़ुलाम हैं। कैसा फेर है ? मन्दिर को मैं ढोंग समझता था। उसके आगे जाने में भी नाक सिकोड़ता था। आज मैं ही हूँ कि सवेरे चार बजे मन्दिर के द्वार पर मिलूँगा। किसी को यकीन आएगा ? सचमुच ईश्वर ही उसका रक्षक है। प्रसाद लेकर लौटता हूँ, तभी वह जागती है। मैं उसके माथे पर सिन्दूर-बिन्दु लगाता हूँ। बेचारी·····

शेखर—कुरुप का इतना दुर्बल रूप मैंने कभी नहीं देखा।

कुरुप—बहादुरी सब हवा हो गयी, भाई सा'ब ! आपको वह कुरुप याद होगा जो शिकार, वन-भ्रमण, पिकनिक आदि के पीछे पागल रहता

था। भय किस चिड़िया का नाम है, मुझे मालूम न था। किसी का विरोध हो, उसे तिनका समझता था। वह समय····क्या-क्या न किया मैंने·····मेरे ख़ून का उबाल·····भाई सा'ब आप तो जानते ही हैं।

शेखर—उस दिन की साँझ·····हाँ 'बड़ा दिन' था····· कल की तरह याद है, यह कहते हुए एक बनदेवी के साथ लाये थे कि "मैंने इससे शादी की है, भाई सा'ब, ज़रा देखो तो मेरी पत्नी को····" —वह अनुपम रूप आज भी आँखों में मूर्ति बन कर खड़ा है।

कुरुप—हाँ, भाई सा'ब। वह बनदेवी ही थी। मैं अभिमान से नाच उठता था। हाँ, वह बात ही इतनी सुखद थी। मुझे घमण्ड से झूम उठने का अधिकार था। वह समय था, जब सारा शहर उसे मेरे साथ देखकर साँस रोके खड़ा रह जाता था। एक बारगी गा दे तो·····नहीं, नहीं, यह सब·····क्यों·····बस वह हंसिनी ज़रा चल दे तो उसकी मनहर चाल !···नहीं, नहीं, किस लिए यह सब याद करूँ ? पर वह याद ही मेरी थाती है। अब क्या है·····बीत जाएगा ऐसे ही, सब कुछ !

शेखर—इलाज से क्या कुछ सुधार नहीं हो रहा ?

कुरुप—अब सुधार क्या होगा ? मेरी अब एक मात्र यही चिन्ता है कि उसे कोई तकलीफ़ न हो। इसे मैं सह नहीं सकता। कोई दवा और इलाज नहीं बचा। पैसे को फूँक देना, मेरे लिए कोई नयी बात नहीं। लकीर का फ़कीर नहीं हूँ। एक लम्बी रकम अब तक खर्च कर चुका हूँ।

शेखर—हाँ, विजया कहती थी, वह कमरा ही अस्पताल-सा लगता है। आखिर, खर्च अपने लोगों पर ही तो किया जाता है।

कुरुप—मैंने कुछ न किया—किसी को यह इल्ज़ाम लगाने का मौका न दूँगा। पैसा आएगा और जाएगा, कुछ बात नहीं। उसकी छोटी बहन को भी मैं अपनी बहन के समान ही रखता हूँ। अब मेडिकल कालिज में पढ़ती है। मेरे घर में जब से पैर रखा, आँसू का नाम भी नहीं जानती।

शेखर—हाँ, वासन्ती एक अच्छी लड़की है। कैसा विनय है और कैसी नम्रता। पढ़ने में चतुर! दो-तीन वर्ष बीतने दो, एक अच्छी लेडी-डॉक्टर बन जाएगी।

कुरुप—तब फिर उसकी मर्ज़ी। नौकरी करे, प्रेक्टिस करे, शादी करे, चाहे कुछ करे। उसके बाद मेरा कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है।

[विजयम्मा एक गिलास में शरबत और एक दूसरे औषधि-गिलास में अरिष्ट लाती है।]

शेखर—मैं विजया को बुलाता ही था।

विजयम्मा—चाय का समय नहीं है, इसलिए चाय नहीं बनायी। पर शरबत पी सकते हैं।

कुरुप—बहुत खूब! पर उस औषधि-गिलास में क्या है?

शेखर—अरिष्टासव। कुछ दिन से पेट में वायु उठनी शुरू हुई है। इन्हीं की देखभाल में हूँ?

करुप—बस देखभाल है, या इलाज भी?

शेखर—आयुर्वेद की अच्छी ज्ञाता हैं। कभी कोई चूर्ण मेरे सिर में भर कर मलेंगी। मल-मल कर अब सिर में बाल ही नहीं रहे। कभी नाक में कुछ चढ़ा देंगी·····कभी रक्त चन्दन का लेप ही मेरे सारे मुँह पर चूने की तरह पोत देंगी। सब सह लेता हूँ।

विजयम्मा—एक छींक आये तो खुद ही घबरा जाएँगे। फिर यह सब

कैसे छूट सकता है ? भाई, सुना है, वासन्ती को कोई नौकरी मिली है, बम्बई में।

कुरुप—किसने कहा ?

विजयम्मा—कहा किसी ने। (**शेखर की ओर देखती है**)

शेखर—कहा तो मैंने ही था। उस गाड़ी वाले ने शायद मुझ से कहा था। शायद ग़लत होगा।

कुरुप—है तो सच, आज भारती भी मुझ से कहती थी। लेकिन मुझे कुछ खास जँची नहीं।

विजयम्मा—३५०) रुपये महीने मिलेंगे। उसे जाने दीजिए, भाई !

कुरुप—वाह, क्या आप समझती हैं, कि मैं रोकूँगा ?

शेखर—मेडिकल कालिज का पहला साल ही है न ! कोई बात नहीं तीन चार वर्ष तक यों परेशान न होना पड़ेगा शायद, शायद पढ़ना न चाहती होगी।

कुरुप—यह भी उसकी मर्जी है। खुद समझदार है। सयानी है। अपने बारे में निश्चय करने लायक है। अपने पैरों खड़ी हो सकती है। अपनी राय लादना मैं उचित भी नहीं समझता।

विजयम्मा—वासन्ती चली गयी तो भारती की तकलीफ़ बढ़ जाएगी। एक नन्हीं बच्ची भी तो है।

कुरुप—ओह, बच्ची का क्या है ? उसे देखने को लोग हैं। फिर बच्ची को लेने का उसके पास समय भी कहाँ है ? ज़्यादातर कालेज में ही बीतता है। उसे तो बच्ची का उठाना भी नहीं मालूम।

शेखर—खैर ! उसे मौका मिला है, हमें रोकना नहीं चाहिये। नहीं तो एक दिन पलट कर पूछेगी—"क्या हुआ अब, नौकरी मिलती थी ?

उस दिन तो जाने से रोक दिया।" फिर जो जिसके भाग्य में है, होकर ही रहेगा।

कुरुप – हाँ भाई सा'ब ! पर वासन्ती ने इस विषय में मुझसे अभी कुछ नहीं कहा। बेचारी·····सब खूब सोच-समझकर ही मुझ से कहती है, तो·····अब मैं चलता हूँ। (उठता है)

शेखर—ऐसी जल्दी क्या है ? भोजन करके जाना। व्यंजन 'तडुताम् पुलिशेरी' है। यहाँ का स्पेशल है।

कुरुप—नहीं, फिर कभी।·····उसे दवा देने का समय हो गया है। बच्चों की सी आदत है। मैं पिलाऊँगा तभी पीयेगी·····नहीं तो ज़रा तसल्ली नहीं।

विजयम्मा—जाइए तब तो।

शेखर—हम आज रात को नहीं तो कल सवेरे आएँगे।

कुरुप—समय मिले तब आइए। न भी आएं तो बुरा न मानूँगा। तो अब चलता हूँ। (जाता है)

शेखर—बेचारा ! लोग क्या-क्या कहते हैं इसके बारे में। कितना भला आदमी है !

विजयम्मा—ठीक कहा आपने ! आदमी पहले बड़ा बावेला मचाने वाला था। मगर शादी के बाद एक दम बदल गया।

शेखर—नरम हो गया है, स्थिरता आ गयी है।

[यवनिका-पतन]

●

चौथा दृश्य

[रंगमंच-संकेत :

कुरुप का घर। पहले दृश्य का रंग-विधान। वासन्ती मेज़ के निकट बैठी पुस्तक पढ़ रही है। पंकज डलिया में रंग-रंग के फूल तोड़कर लाया है। थोड़ी देर वासन्ती को पढ़ते देख खड़ा रहता है, फिर लाल रंग का फूल वासन्ती की ओर बढ़ाता है। फूल के निकट आने पर वह चौंककर देखती है।]

वासन्ती—ह····ह····हय्! तू है। मैं डर गया। आज फूल नहीं चाहिएँ। फूल लगाने में कोई रस नहीं आता। फिर मैं बाहर जाती ही कहाँ हूँ।

[पंकज दुखित-सा खड़ा रह जाता है।]

वासन्ती—अरे, मैं फूल लगाऊँ, यह भी कोई ज़बरदस्ती है।

पंकज—(सिर हिलाकर संकेत से कहता है—हाँ, है।)

वासन्ती—तो ला इधर! ज़रा-सी बात को मुँह मत लटका।

(वासन्ती फूल लेकर बालों में गूँथ लेती है। पंकज बच्चे की तरह खुश होता है।)

वासन्ती—क्यों रे, सुना है तुझे निकाल दिया है।

पंकज—(संकेत से बताता है—मैं नहीं जाऊँगा।)

वासन्ती—यहाँ पड़ा-पड़ा क्यों खाल उधड़वाता है। तेरा अपना घर है तो फिर जाता क्यों नहीं? चला जा, वहीं अच्छा है।

पंकज—(संकेत से—वह सब मेरे लिए कुछ नयी बात नहीं।)

वासन्ती—क्यों रे, तेरा घाव पुर हो गया ? दर्द तो नहीं है।

पंकज—(घुटना आगे बढ़ाकर दिखाता है और संकेत करता है—कुछ नहीं है।)

वासन्ती—हुँ, अच्छा जा। सारे फूल पूजा में रखना। और देख, मेरे फ़ोटो का शृंगार मत करना। मैं भगवान् नहीं हूँ।

[पंकज हँसता हुआ कमरे में जाता है। मगर तुरन्त लौट आता है, हाथ में एक तस्वीर है जिसका शीशा टूट गया है। चित्र वासन्ती का ही है।]

पंकज—(संकेत से समझाता है—धरती पर पड़ा था। भारी नुकसान हुआ।)

वासन्ती—मेरा ही फ़ोटो है न ! खूँटी से गिर गया, गिरेगा ही। शीशा खण्ड-खण्ड हो गया, हो ही जाएगा। विकृत हो गया जख्मों से, होगा ही। कोई आश्चर्य नहीं पंका !

[भीतर बच्ची का रोना सुन पड़ता है।]

वासन्ती—कोई नहीं है वहाँ ! (उठती है)

पंकज—(पूछता है) यह फटा फ़ोटो मैं ले लूँ ?

वासन्ती—यह हतभागा चित्र लेकर क्या करेगा तू !

पंकज—(बच्चों की तरह हठ करता है, संकेत से कहता है—फ़ोटो मुझे चाहिए ही। हंसता है)

[वासन्ती एक वेदना की क्षीण मुस्कान के साथ बच्ची के कमरे में जाती है। नाणी गाती है····"ओमन तिंकलूं किड़ावो"····वासन्ती। भी अपना स्वर उस लोरी में मिलाती है। पंकज फ़ोटो को थोड़ी देर आदर-पूर्वक देखकर किसी की आहट पाकर इसे कुरते के भीतर छिपा लेता है। नाणी आती है।]

नाणी—पंकज पिल्ले, यहाँ क्या करते हो ? खाना खाना हो तो अन्दर आ

जाओ।.....ओह, आज फूल इतना ही है क्या.....? गुलाब का एक फूल हमको न देंगा !

[पंकज सकेत से पूछता है—किसलिए ?]

नाणी—काहे को ! एक फूल लगायेंगा—हमको भी देखने वाला है। हमारा बाल भी काला है। देखो ज़रा कैसा है ?

[पंकज खिलखिला कर हंस पड़ता है। नाणी लोरी गाती-गाती चली जाती है। पंकज अपनी हँसी नहीं रोक पाता। हँसी ऊँची उठती है। कुरुप पीछे के दरवाजे पर आ खड़ा होता है।]

कुरुप—क्यों बे ?

[पंकज की हँसी का जैसे अचानक किसी ने गला दबा दिया हो। वह हक्का-बक्का खड़ा रह जाता है।]

कुरुप—क्यों बे, यह बाज़ार है क्या ? यहाँ पेंठ लगती है क्या ? या फिर ताड़ीखाना है ? हिनहिनाता है, ठी, ठी, ठी, ठी करता है। क्या समझ रखा है, तूने ? यहाँ कोई पूछने वाला नहीं है क्या ? आगे तेरी आवाज़ भी यहाँ न सुनाई दे। समझे ?

[पंकज हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है, मानों उसने कोई घोर अपराध किया हो।]

कुरुप—दूर हो यहाँ से, अभी। दिमाग़ आस्मान पर चढ़ता जा रहा है। क्यों बे, तेरे हाथ में क्या है ? टूटा हुआ फ्रेम। इसके अन्दर का फ़ोटो कहाँ है बे ?

[पंजक बेबसी की मुद्रा दिखाता है।]

कुरुप—किसका था, कहाँ है, बतला ?

[पंकज कुरते की भीतरली जेब से फ़ोटो देता है।]

कुरुप—ओ हो,·····फ़ोटो है !····· खूँटी से गिर पड़ा था या तूने ही फोड़ डाला।

पंकज—(समझाता है—कमरे में नीचे पड़ा था।)

कुरुप—तुझे उसने दिया था या तूने चुरा लिया है ?

पंकज—(संकेत से बताता है—उससे पूछ कर लिया है।)

कुरुप—(ऊँचे स्वर से) वासन्ती ! (जैसे वह पहले से ही सब समझता है) मैं इसे पसन्द नहीं करता। इनाम है। क्यों बे, कहाँ रखा था तूने यह ? ज़रा फिर वहीं रख इसे।

[पंकज चित्र लिए चुपचाप खड़ा रहता है। वासन्ती का प्रवेश]

वासन्ती—(भीत स्वर में) बुलाया था मुझे ?

कुरुप—(पंकज से) हुँ, घबरा मत,·····रख, रख !

[पंकज चित्र कुरते की भीतरली जेब में रखता है।]

कुरुप—देखा ?·····छाती से ·····हृदय से सटा लिया है ! क्या ख़ूब ?

वासन्ती—फट गया था। माँगा तो मैंने दे दिया।

कुरुप—परन्तु इसे तुम्हारा फ़ोटो अपने पास रखने का क्या अधिकार है ? क्यों कोई अधिकार है तुझे ?

[पंकज दीन-सा, भौंचक्का-सा खड़ा पहले इधर-उधर ताकता है। फिर कान पकड़कर संकेत करता है मानो कह रहा है—कोई अधिकार नहीं है।]

कुरुप—कितना भी पिटे·····शर्म नहीं, बेहया ! पशु·····क्यों बे, तू यहां पिट-पिटा कर भी क्यों पड़ा है ? कहीं जा मरने को और जगह नहीं है तुझे। ·····फ़ोटो इधर रख। (फ़ोटो लेकर मेज पर रख देता है) जा इस बार छोड़ देता हूँ। फिर मुँह मत

दिखाना, समझे ?

(दोनों को अश्रु भरे नयनों से देखता पंकज चला जाता है। वासन्ती भी जाना चाहती है।)

वासन्ती—(चलते-चलते) उस बेचारे ने क्या किया ?

कुरुप—उसने तो कुछ नहीं किया। किया तो तूने ही। ·····इधर खड़ी हो जा। **(वासन्ती फौरन मुड़ कर उसके मुँह की ओर देखती है)** तेरी कुछ नयी बातें सुनी हैं। नौकरी को प्रार्थना-पत्र किससे पूछ कर भेजा था।

वासन्ती—अखबार में विज्ञापन देखा। यों ही भेज दिया। आशा न थी।

कुरुप—अपनी बहन से पूछा था तूने ?

वासन्ती—हाँ, उनसे पूछा था। अनुमति भी ली थी।

कुरुप—तो बहन के कहने से ही तूने नौकरी की प्रार्थना की, क्यों ?

वासन्ती—ऐं।

कुरुप—**(चीख कर)** बहन के उकसाने से ही तूने नौकरी की प्रार्थना की थी ?

वासन्ती—नहीं तो।

कुरुप—**(कुछ धीमे स्वर में)** झूठ है ? मैं मर गया हूँ क्या ? मुझ से पूछा तक नहीं। बिना किसी के पूछे-गूछे इस प्रकार करने का साहस तुझे कब से हुआ ? बक्स ठीक कर लिया ? तो लाऊँ टैक्सी ? किराया और खर्च, देता हूँ। जाती है बम्बई ? **(ऊँचे स्वर से, लगभग चीख कर)** जाती है ?

वासन्ती—**(मन्द स्वर में, करीब करीब मरी आवाज में)** नहीं।

कुरुप—फूह !···· ···नौकरी ! उसी की और कमी है ? पिछले सात साल से घर में बसा कर एक स्त्री को नहीं, मैंने एक विषैली नागिन को दूध पिलाया था।

वासन्ती—(सिसकियां भरती है) जीजा जी·····मैं विषैली नागिन ?

कुरुप....चल छोड़ इसे। कालेज गयी थी।

वासन्ती....नहीं।

कुरुप—कल ?

वासन्ती—गयी थी।

कुरुप....(ऊपरी शालीनता से) अपने प्रेमी से मिली थी। (वासन्ती चौंकती है)....चौंकती क्या है। (परुष स्वर में) अपने प्रेमी से मिली थी ? इसीलिए कालेज जाती है न ? खाने को, पहनने को····· सोलह-सिंगार को, मेरा पैसा ! और कालेज जाती है उससे बतरस करने ? क्या नाम है उसका—बालचन्द्रन् ही न ?

वासन्ती....हाँ।

कुरुप....(क्रुद्ध स्वर में) हूँ, भूल गयी वह दिन, जब एक चुहिया सी ज़मीन पर पड़ी थी। रोती थी तो आंखों में पानी भी न आता था। लालारस पिया यहाँ आकर। अरी, तेरे बालों में छल्ले कब से पड़े ? इन उभरे गालों पर सेब की लाली कब से चढ़ी ? कब से यह गहने सजे ? अभी खाना हज़म भी न हुआ होगा कि भूल गयी मुझे। मेरा जरा भी ख्याल नहीं रहा ?

वासन्ती....(दूर से आती सी आवाज में) भूली नहीं हूँ मैं। मुझ से भूल हुई तो मुझे माफ़ करें।

कुरुप... याद रखना ! जो हाथ तेरी रक्षा कर सकते हैं, वे सज़ा भी दे सकते हैं। चाहूँ तो सीने से लगा लूँ, नहीं तो ठोकर भी मार

सकता हूँ। यहां से भाग कर बच सकती है—यह विचार भी मत करना। जैसे खड़ी करूँ, खड़ी रह, नहीं तो धरती पर गिरेगी। मेरे हाथों पल कर मेरे हित के विरुद्ध कुछ किया, तो कोई क्यों न हो, कुछ भी उसका परिणाम क्यों न हो—मैं बदला लेकर ही छोड़ूंगा। धूल में मिला दूँगा, खोद कर गाड़ दूँगा। (एकाएक सौम्य बनकर) रोना मत ! आँसू पोंछ कर भीतर जा ! मन में कोई बात उठी हो तो यहीं उसका अन्त कर दे।

[वासन्ती अन्दर जाती है। अन्दर के कमरे में बच्ची रोये जा रही है—लोरी की दो पंक्तियाँ सुन पड़ती हैं। पंकज का रखा फ़ोटो कुरुप उठा कर दो क्षण तक देखता रहता है। वह भीतर जाना ही चाहता है, तभी गाड़ी का 'हार्न' सुनायी देता है, रुक जाता है। डाक्टर मेनोन हाथ में बैग लिए प्रवेश करते हैं।]

कुरुप—(हाथ जोड़कर हँसते हुए) हार्न सुनकर अनुमान किया आप आ रहे हैं।

डाक्टर—कहीं जाने का विचार था, या अभी लौटे हैं ?

कुरुप—मैं कहाँ जा सकता हूँ डाक्टर ! यहाँ और कौन है ? जब देखो पुकारती रहती है।

डाक्टर—कैसी हैं अब ?

कुरुप—मुझे कुछ पता नहीं चलता। माथा ज़्यादा गरम लगता है।

डाक्टर—कुरुप सा'ब की घबराहट से ही ऐसा लगता होगा। हाथ के स्पर्श से ही लगा होगा ?

कुरुप—हाँ, हाँ, मेरा हाथ कुछ अधिक गरम है।

डाक्टर—अपना ख़्याल रखना। कहीं खून का दबाव बढ़ गया तो····

कुरुप—वाह, वाह ! आप तो मेरे इलाज की भी सोचने लगे।

डाक्टर—हाँ, हाँ, हमारी तो जन्मपत्री में ही यह लिखा है।

कुरुप—क्यों नहीं, क्यों नहीं! आप अन्दर जाकर आज़माइए अपनी जन्म-पत्री! (दोनों हँसते हैं)

[डाक्टर अन्दर चला जाता है। कुरुप दीवार पर लटकी बन्दूक को लेकर कुर्सी पर बैठता है। बन्दूक के पुर्ज़ों को अलग-अलग करके साफ़ करता है। अन्दर की बातचीत भी सुनता जाता है।]

[भीतर से ध्वनि-विस्तारक से]

डाक्टर—सोती हैं क्या?

भारती—नहीं, नींद कहाँ आती है। इन्जेक्शन आज भी है क्या? यह सब अब किसलिए।

डाक्टर—दर्द नहीं होने देंगे—ज़रा सी सुई से इतना डरती हैं? ओ हो·····यहीं रख लिया है पानी उबलवा कर। अच्छा किया? यह खिड़की·····क्या खुली नहीं रख सकतीं।

भारती—किसलिए।

डाक्टर—ताज़ी हवा और रोशनी आती।

भारती—नहीं; रहने दीजिये, मुझे पसन्द नहीं।

डाक्टर—नहीं, यह नहीं हो सकता। डाक्टरी पढ़ने वाली एक लड़की इस घर में रहती है। इस पर ध्यान क्यों नहीं देती? रात को नींद आयी?

भारती—नहीं, तो क्या आप सुला सकते हैं कोई दवा देकर।

डाक्टर—मेरी दी वह दवा कितनी बार पी?

भारती—वासन्ती, बताना कितनी बार पी?

वासन्ती—तीन बार।

डाक्टर—अब उसे मत पीना। मैं दूसरी दवा भेजूँगा। आपको पता लगा, इन्जेक्शन लग चुका ? मैंने कहा था न, दर्द नहीं होगा।

भारती—देह के काठ बन जाने पर दर्द क्या होगा ?

डाक्टर—आज ज्वर नहीं है। क्या खाया आज ?

भारती—बता वासन्ती, मैंने क्या-क्या लिया।

वासन्ती—जौ का पानी, चउवरी और एक टुकड़ा बिस्कुट का। दूध देना चाहा, पर पिया नहीं।

डाक्टर—चावल को किनकी का 'सूप' देकर देखो। इस प्रकार हमेशा लेटे रहने से तो·····! बाहर जाकर कुछ हवा खानी चाहिए।

भारती—सिर तो उठाया नहीं जाता, हाथ-पैर वश में नहीं हैं····

डाक्टर—सब ठीक हो जाएगा·····देखें ज़रा·····हाँ, ठीक····मैं कल आऊँगा। बच्ची यहाँ सो रही है। वासन्ती ! बच्ची को दूसरे कमरे में कहीं रख सकतीं ?

वासन्ती—जीजी नहीं छोड़तीं।

भारती—बच्ची को यहीं रहने दीजिए। मैं ही जाऊँगी।

डाक्टर—दोनों का अलग हो जाना ही अच्छा ! कुरुप से मैं कहूँगा।

[रंगमंच पर—डाक्टर कमरे से आते हैं]

डाक्टर—यह सब क्या, बन्दूक-गोली ?

कुरुप—कुछ नहीं, यों ही।

डाक्टर—शिकार का शौक अभी दूर नहीं हुआ दिखता ?

कुरुप—कोई मरने को सामने नहीं आता !

डाक्टर—हत्थे चढ़ जाये तो फिर छुटकारा नहीं, है क्या ?

कुरुप—हाँ, निशाना लिया तो फिर लगेगा ही।

डाक्टर—इसमें ऐसा क्या मज़ा है ?

कुरुप—किसमें ?·····शिकार में ?

डाक्टर—उन बेचारे जीवों को मारने में क्या मज़ा है, जो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते ?

कुरुप— जीवित मनुष्य जन्तुओं को सताये बिना कैसे रह सकता है। पौधों मे भी जीव है, हम उन्हें काट कर खाते है–यह क्या हत्या नहीं है। साँस लेते हैं, उसमें क्या अणु-जीव नहीं होते ? और हम क्या इस तरह जिन्दा रह भी सकते हैं ? एक मन-बहलाव भी,·····बहुत दिन से काम में नहीं आयी थीं, इससे इस पर जंग लग गयी है।

डाक्टर—हर मशीन का यही हाल है। निकम्मे बैठने से आदमी की भी यही हालत हो जाती है।

कुरुप—भारती की हालत कैसी है ?

डाक्टर—आपका हाथ ही ज़्यादा गरम है। उसे आज ज्वर नहीं है। एक बात, कुछ दिन को बच्ची के लिए उसे अस्पताल में रखिए, या दोनों को समुद्र के किनारे, या फिर कहीं अलग-अलग। एक चेन्ज, परिवर्तन, ज़रूरी है।

कुरुप—सोच तो मैं भी यही रहा हूँ। यहाँ से हटने पर सब गड़बड़ ठीक हो जाएगी।

डाक्टर—हाँ, आप यह निश्चय कर लें तो मैं भी उसका आवश्यक प्रबन्ध करने की कोशिश करूँगा।

कुरुप—इस सब की देखरेख आपका ही कर्त्तव्य है·····सचमुच, मेरी अक्ल तो काम नहीं करती। वह मुँह·····देख भी नहीं सकता। समझ में नहीं आता क्या करूँ ?

डाक्टर—इस प्रकार घबराने की कोई बात नहीं कुरुप सा'ब ! हवाखोरी

से ही सब ठीक हो जाएगा। ज़रा सा ध्यान देने से ठीक हो सकती हैं।

कुरुप—इससे ज्यादा और क्या ध्यान दे सकता हूँ ?

डाक्टर—ऐसा वातावरण चाहिए जो जी खुश रखे, सन्तोष दे। लगता है, वह बुरी तरह चिन्ता करती है।

कुरुप—डाक्टर! आपकी बात वैसी ही है, जैसे रोते वक्त कोई ज़िद करे कि मुँह न बिगड़े। रोगशय्या के चारों ओर खुशी और सन्तोष! डाक्टर सब कुछ कह सकते हैं। जो भी हो, अस्पताल तो ले ही जाना चाहिए। हम कोशिश तो कर देखें।

डाक्टर—आप चिन्ता न करें, मैं उसका सारा प्रबन्ध करूँगा। आपको सूचना दूँगा। हाँ, एक बात और। आज फिर भूल गया होता। बालचन्द्रन् के विषय में! मैंने आपसे कहा था न! वह आज फिर आया था।

कुरुप—मैंने भी उस 'लड़के' के बारे में कुछ पता लगाया है। परिचितों की राय अच्छी है।

डाक्टर—इसमें कोई संशय नहीं—ही इज़ ए ब्रिलियेन्ट चैप (वह होनहार युवक है)। इस साल 'एम. बी. बो. एस' पास हो जाएगा। फ़्यूचर अच्छा है। जहाँ तक मै समझता हूँ, वासन्ती भी इस बात से सहमत होगी।

कुरुप—मुझे भी यही बात आकर्षक लगती है। हाँ, आप एक काम कीजिए। जहाँ तक नाते का सवाल है, आप उसके मामा भी हैं, आप ही बुला कर पूछिए।

डाक्टर—नहीं, नहीं, कुरुप सा'ब का पूछना ही काफ़ी है।

कुरुप—आप उनकी जोड़ी अच्छी बताते हैं, तो मुझे कोई एतराज़

नहीं। लेकिन आजकल के लड़के-लड़कियाँ! पेट में क्या है, क्या मालूम? फिर भी शादी तो,.....मेरी राय है कि इस विषय में वे स्वयं निश्चय करें।

डाक्टर—मैं भी आपकी राय से सहमत हूँ।

कुरुप—मेरे पूछने पर साफ़-साफ़ न बताएगी। समझेगी यह मेरी आज्ञा है, आप ही बुला कर पूछें।

डाक्टर—ठीक कहते हैं.....तो फिर मैं कल पूछूँगा।

करुप—कल क्यों, अभी पूछिए न। अजी, 'शुभस्य शीघ्रम्' हो जाए। यह बात ही ऐसी है कि घर के रँग-ढङ्ग में नयी जान सी आ जाएगी। (बुलाता है) वासन्ती ऽ!

(वासन्ती का प्रवेश। रोते-रीते आखें लाल हो गयी हैं। मुख पर डर का भाव।)

कुरुप—(मृदु स्वर में) वासन्ती, डाक्टर मामा तुम से कुछ कहना चाहते हैं। तुम यहीं बैठो। मैं अभी आता हूँ। कहिए डाक्टर।

[कुरुप अन्दर जाता है]

डाक्टर—बैठ जा, बेटी।

वासन्ती—जी, मैं ठीक खड़ी हूँ! कहिए।

डाक्टर—मैं ज्यादा नहीं कहता। बात ही ऐसी है जिससे सबको सन्तोष होगा।

[कुरुप झपटता सा प्रवेश करता है]

कुरुप—मैं अपनी बन्दूक नहीं ले गया था। बोले जाइए.....लो, मैं यह चला गया। (जाता है)

डाक्टर—बात और कुछ नहीं। अपने कालेज के फाइनल के विद्यार्थी बालचन्द्रन् को तो जानती हो?

वासन्ती—हाँ, देखा है।

डाक्टर—परिचय नहीं है ?

वासन्ती—जानती हूँ।

डाक्टर—मेरा दूर का रिश्तेदार है। इस घर से सम्बन्ध हो जाए तो हम सब बड़े खुश होंगे। कुरुप सा'ब से कहा, उन्हें भी सन्तोष है। पर निर्भर तो सब वासन्ती जी की राय पर है। विचार कर कहो, एतराज़ तो नहीं है न !

वासन्ती—(सोच कर) मैं सहमत नहीं हूँ।

डाक्टर—(अकचका कर) ऐं, क्या ?

वासन्ती—मैं शादी नहीं करना चाहती। मुझे क्षमा कीजिएगा। और मुझ से कुछ न पूछें। मेरा नाश न कीजिएगा। मेरी बात का बुरा न मानिएगा—मुझे अब जाने दीजिए·····

[फ़ौरन हाथों से मुँह छिपा कर अन्दर जाती है। डाक्टर अचम्भे में खड़ा रह जाता है। कुरुप प्रवेश करता है।]

कुरुप—इतनी जल्दी चली गयी।

डाक्टर—कुछ समझ में न आया ?

कुरुप—क्या कहा उसने ? यह कि पसन्द नहीं है ?

डाक्टर—वही तो मैं समझ नहीं पाता !

कुरुप—क्या मालूम किसी और से प्रेम हो गया हो। किसी को वचन दिया हो,·····प्रेम है न ? सयानी हो चली है·····कौन जाने ?

डाक्टर—ऐसा तो कुछ नहीं मालूम होता।

कुरुप—तो शायद पढ़ाई जारी रखना चाहती होगी। नादान लड़की ! समझती होगी डिग्री मिल गयी तो सब मिल गया·····फिर भी इतनी जल्दी भीतर क्यों चली गयी ? वासन्ती ऽ ऽ·····

डाक्टर—मैं चलता हूँ कुरुप सा,ब !

कुरुप—वासन्ती !····नहीं····अब जल्दी नहीं आएगी। अच्छा, मैं एक बार कौशल से पूछूँगा।

डाक्टर—पसन्द न हो तो जबरदस्ती न करना·····

कुरुप—शायद बालचन्द्रन् कल-परसों आप से जानने आए।

डाक्टर—इसमें क्या शक है ? सच तो यह है कि वह बाहर गाड़ी में बैठा मेरी राह देखता है।

कुरुप—यहीं फाटक पर खड़े हैं ? उन्हें भी अन्दर ले आते ! आपने बताया नहीं। (बुलाने की चेष्टा दिखाता है)

डाक्टर—अन्दर बुलाने में कोई सार नहीं। मैं उसे सब बता दूँगा। थोड़ी निराशा होगी·····कोई परवाह नहीं। तो, मैं चलता हूँ।

कुरुप—अच्छा, उस लड़के से ऐसा कुछ न कहें जिससे वह निराश हो। (हाथ जोड़ता है)

[डाक्टर जाता है। थोड़ी देर कुरुप उसे जाते देखता रहता है, फिर मुड़ता है।]

कुरुप—वासन्ती, इधर आ·····(वासन्ती आती है)

वासन्ती—क्या चाहिए जीजा जी !

कुरुप—तूने जो नमक खाया, उसका ख्याल तुझे रहा ? बड़ी नमकहलाल है तू ! तुझसे मुझे दसगुना स्नेह है।

वासन्ती—जाने दीजिये मुझे ! ·····लाश पर क्यों वार करते हैं ?

कुरुप—वफ़ादार है तू ! क्या तूने अपने जीजा जी को भली भाँति समझा ? (अशालीन हँसी के साथ) रसीली ! अच्छा, तू जा·····जा।

[वासन्ती जाते-जाते दो क्षण तक चिन्ता से निश्चल खड़ी रह जाती है। फिर अन्दर जाती है। एक ओर से बालचन्द्रन प्रवेश करता है।]

बालचन्द्रन्—(धीमे स्वर से) वासन्ती·····!

वासन्ती—(गहरी साँस लेकर) ऐं·····यहाँ आप ?

बालचन्द्रन्—(शान्ति से)—माफ़ करना। मुझे कुछ कहना है।

वासन्ती—ईश्वर के लिए मुझसे कुछ न कहिए। डाक्टर से मैंने सब कह दिया है।

बालचन्द्रन्—उन्होंने मुझे सब बताया है। सुनकर ही आया हूँ। मुझे मालूम है—वासन्ती ने जो कहा है, सब झूठ है। मुझे लगता है, यह सब वासन्ती से कहलवाया गया है।

वासन्ती—नहीं, नहीं, अब आशा करने से कुछ न होगा। मैंने समझ लिया है, मैं बलि का पशु हूँ। जोजी की रक्षा का यही एक उपाय है। जाइए आप,·····यहाँ मत ठहरिए·····मेरा सत्यानाश न कीजिए। मैंने आपको आशा दिलायी थी, पर अब मुझे माफ़ कीजिएगा।

बालचन्द्रन्—वासन्ती !

वासन्ती—नहीं, कुछ न कहिए। मुझ से कुछ मत कहिए। मुझ से सहानुभूति है तो मुझे भूल जाइए। आप चले जाइए, अभी···· अभी·····

[वह अपने हाथों से मुँह ढककर ज़ोर से सिसक उठती है, और रोती रोती चली जाती है।]

बालचन्द्रन्—ठहरो, वासन्ती !

(कुरुप का प्रवेश)

कुरुप—बालचन्द्रन् हो, हैं ना ?

बालचन्द्रन्—(परुष स्वर से) हाँ !

कुरुप—(सौम्य स्वर में) पूंकाविल् कइमल भाई का बेटा ?

बालचन्द्रन्—(और दृढ़ता से) हाँ !

कुरुप—तो खड़े क्यों हैं, बैठिए भी !

बालचन्द्रन्—इस नरक में ? इस कसाईखाने में।

कुरुप—यहाँ भी मनुष्य ही रहते हैं भाई ! बैठिए तो।

बालचन्द्रन्—घर है यह। बाहर से कलई कर रखी है, भीतर से गर्दन पर छुरी रेती जाती है। नहीं सोचा था कि तुम इस हद तक अपने हृदय को मुर्दा कर चुके हो। टुकड़े होते दिल की आहें और दर्द समझने की ताकत बची होगी—इसी की मैंने आशा की थी।

कुरुप—भाई ! इस तरह बिगड़ने की क्या जरूरत है ! आखिर मुझे फटकारना ही है तो बैठकर भी फटकार सकते हो। मैं तुम्हारे बाप को जानता हूँ, मामा को जानता हूँ, सबको जानता हूँ, किसे नहीं जानता ?

बालचन्द्रन्—बस मुझे नहीं जानता। साफ़ मन और साफ उद्देश्य से मैं मैं बड़ी-बड़ी आशा लेकर ऐसे व्यक्ति के यहाँ आया था, जिसने कभी एक अनाथ स्त्री को अपनी संगिनी बनाया था। तुमने कितनी बेरहमी से उस प्रत्याशा की गरदन मरोड़ दी, चूर-चूर कर डाली।

कुरुप—चूर-चूर कर डाली, मैंने ? इतनी जल्दी जो चूर-चूर हो गयी, वह जरूर कोई बड़ी कमज़ोर चीज़ होगी।

बालचन्द्रन्—डाक्टर मामा से वासन्ती ने कहा कि वह मुझ से शादी करने को सहमत नहीं। एक कसाई की तरह बन्दूक-तलवार दिखाकर तुमने ही उससे यह कहलवाया है न ?

कुरुप—खूब रही·····कथा खूब फैलेगी, खूब,·····मैंने बन्दूक-तलवार दिखायी (नम्र होकर) पहले-पहल आये हो। इस तरह खड़े रहना ठीक नहीं। ज़रा बैठिए !

बालचन्द्रन्—नहीं चाहिए यह दोस्ती। पहली और आखिरी बार आया हूँ। भावों पर काबू न रहा, इसलिए चला आया। एक गाय को बन्द कमरे में रखने का मतलब क्या है ?

कुरुप—बन्द कमरा ? वह रोज़ कालेज नहीं आती ? तुमसे मिलती नहीं ?

बालचन्द्रन्—आती है, मिलती भी है। जैसे बलिपशु को थोड़ी देर के लिए चरने-हवा खाने को कोई छोड़ दे !

कुरुप—(गम्भीर बन कर) अच्छा····तो तुम वासन्ती को जानते हो ?

बालचन्द्रन्—वासन्ती को मैं जानता हूँ, और वासन्ती मुझे !

कुरुप—तुम उससे प्रेम करते हो ?

बालचन्द्रन्—सम्पूर्ण आत्मा से !

कुरुप—(ज़रा सोचकर) वासन्ती भी तुमसे प्रेम करती है ?

बालचन्द्रन्—मैं यही विश्वास करता हूँ। तुम्हारे मज़बूत पंजे की मरोड़ में बेदम पड़ी है। उँगलियों को ज़रा सीधा कर दो····· वह अभी मेरे साथ खड़ी होगी। पुण्य होगा। इस प्रकार हमारा सत्यानाश मत करो।

कुरुप—तुम्हारे इस जोश में बड़ा मज़ा आया। उससे तुम शादी करने को तैयार हो। उसके बारे में सब जान-बूझ भी लिया होगा। मेरे अतिरिक्त न उसका कोई रिश्तेदार है, न कुलीन घराना ही।

बालचन्द्रन्—मुझे मालूम है यह। इन सारी कमियों के बावजूद भी मैं शादी करूँगा।

कुरुप—तुम्हारे घर वाले और रिश्तेदार न चाहें, तो भी ?

बालचन्द्रन्—चाहें या न चाहें, मेरे लिये यह कोई समस्या नहीं। हम तकलीफ़ों का सामना करके जिएंगे।

कुरुप—मुझे मालूम न था, तुम यहाँ तक पक्के और सच्चे हो। मैं तुम्हें उसे देने को तैयार हूँ।

बालचन्द्रन्—(चकित भाव से देख कर) अनजाने मैंने कुछ बेबुनियाद बातें कह डाली हैं। मुझे क्षमा कीजिए !

कुरुप—शादी·····आज ही ! अभी ! बिना मण्डप, बिना दावत, बिना पुरोहित, कुछ आवश्यक नहीं, यहीं पर·····बिना चहल-पहल, बिना रंगरलियों के, बिना साज-शोभा के, बस इसी मुहूर्त, क्यों कैसी रहे ?

बालचन्द्रन्—(अचम्भे में पड़कर) मुझे मंजूर है।

कुरुप—तुमने अभी कहा कि वासन्ता से उसके सारे गुण-दोषों के साथ शादी करने को तैयार हो। हैं न ! एक बात और·····

बालचन्द्रन्—कहिए, क्या है !

कुरुप—फिर दोष मत देना कि मैंने तुमसे कुछ छिपाया और तुमने न जाना। वह·····वह गर्भवती है।

बालचन्द्रन्—ऐं, क्या ऽ ऽ (आश्चर्य से मुंह बाये रह जाता है।)

कुरुप—दीप-यष्टि मँगाऊँ, बुलाऊँ वासन्ती को·····

बालचन्द्रन्—(जैसे स्वप्न देखता हो) सच है यह ?·····

कुरुप—सच हो तो ? जल्दी बोल,···बोल बुलाऊँ ? तैयार है या नहीं ? नहीं ? हैं न ? (क्रोध से काँप कर) भाग ! आवारा !! निकल यहाँ से·····तू भी और तेरा प्यार भी·····(चिढ़ाकर) बस इतना ही ?·····हुँऽऽ·····जाऽऽ (फाटक की ओर उंगली उठाता है।)

बालचन्द्रन्—(डूबते स्वर से) छलनामयी !

[यवनिका-पतन]

●

पाँचवां दृश्य

[रंगमंच-संकेत :

विजयम्मा का घर। भीतर से विजयम्मा और बाहर से वासन्ती प्रवेश करती हैं।]

विजयम्मा—कौन ? वासन्ती ? आज से तेरी परीक्षा शुरू हुई है न ?

वासन्ती—यही कह कर घर से निकली थी। परीक्षा-हाल में भी जाकर बैठी। पर इतना ही। कुछ लिखा नहीं।

विजयम्मा—मैं नहीं मान सकती। मुझे पूरा विश्वास है कि तू प्रथम श्रेणी में पास होगी।

वासन्ती—पर मैं कुछ पढ़ती नहीं जीजी ! पढ़ने के लिए मन और बुद्धि तो ठिकाने पर चाहिएं। जैसे सब बिखर गया है।

विजयम्मा—तो तू यह कहती है कि तू सफल न होगी पगली ! अच्छा बैठ, डाक्टर कहता था कि भारती अब पहले से ठीक है अच्छी है !

वासन्ती—क्या ठीक है, क्या अच्छी है ! जीजी, हमारी मदद तो आप ही कर ही सकती हैं। प्रार्थना करती हूँ, हाथ मत छोड़ देना..... अधिक कुछ नहीं, सिर्फ ज़िन्दा रहना चाहती हैं, यही बहुत है। गलियों की ठोकर खाएँगी, भीख मिले तो ठीक, न मिले तो भूखी रह लेंगी। पर यह बन्धन तो अब छिन्न होना ही चाहिए।

विजयम्मा—क्या बीती है तुझ पर ?.....क्या हुआ, वासन्ती ? साफ़-साफ़ बता !

वासन्ती—घर से यही विचार करके निकली थी कि कहीं भाग जाऊँ। मगर.....सगी बहन खाट से लगी है, उस नन्हीं अबोध बच्ची

का भी मोह नहीं छूटता, उसका रोना अपनी ओर खींचता है। इसलिए मैं फिर उस नरक में लौटूँगी।

विजयम्मा—क्या बीता री ? क्या कुरुप भाई तेरे बम्बई जाने से सहमत नहीं। कुछ बुरा-भला कहा क्या ?

वासन्ती—नाम मत लो जीजी उस पशु का। सहन करने की भी कोई हद होती है। चौबीसों घण्टे कोई डर से काँपता कैसे रह सकता है? छोड़िए मेरी बात। आह ! जीजी की जान बचाइए। महीनों से खाट पर पड़ी हैं। उस आदमी का विश्वास करके, उसे अपना ईश्वर मानकर चली आयीं। आज तक उसकी किसी इच्छा का विरोध नहीं किया, चूँ तक नहीं की। उस वहशी जानवर के हर इशारे पर नाचती रही। पर जीजी और आगे न सह सकेंगी। वह कुछ कह नहीं सकतीं, तिल-तिल करके प्राण दे रही हैं। एक बार, केवल एक बार, उनके कमरे में, उनकी रोगशय्या के पास गये होते·····ज़रा सिर सहलाया होता,·····प्यार का एक शब्द कहा होता, तो·····! एक दिन भी यह न हुआ (गला रुंध जाता है।)

विजयम्मा—यह क्या ? वासन्ती, क्या यह सच है। कुरुप भाई भारती से घिनाते हैं, कसे विश्वास करूँ ?

वासन्ती—विश्वास करेंगी, आज नहीं तो कल विश्वास करेंगी। यही हाल रहा तो उस खाट पर ही·····मैं अपनी जीभ से कैसे कहूँ ?···· मेरी ब न !

विजयम्मा—वासन्ती ऽ !

वासन्ती—हाँ जीजी, यह तो होगा ही। दूसरा मार्ग होता तो मैं मन में घुटती ये बातें आज भी न खोलती। मुझे बहन ही आंखों-देखा ईश्वर है। रक्त में लथपथ पिता के शव से हम दोनों साथ लिपट कर रोयी। जीवन के अन्धकार और प्रकाश को हमने मिलकर

भोगा। मैं कैसे बहन को भूल सकती हूँ ? उसकी पसलियाँ चूर-चूर हों, तो आज रोने को मैं ही तो हूँ। कल रात·····उस नर-पिशाच ने·····उफ़, हाय ! मैं कल्पना भी नहीं कर सकती···· उफ़ ·····उफ़·····

विजयम्मा—(अति विह्वल होकर) नहीं, नहीं वासन्ती ! कहने की ज़रूरत नहीं। मैं सब समझती हूँ। हे राम,·····ऐसे ऐसे लोग, भी हैं जो हँस-हँसकर गला घोंटते हैं।

वासन्ती—जीजी, कमरे में बहन की लाश पड़ी सड़े तो वहाँ मच्छरों और मक्खियों का ही जमघट लगेगा, कीड़े ही अपना ठिकाना बनाएँगे। यही तो होगा न ! हमारा रहा कौन है। हाय···· हाय, मैं उसका अन्न खाती हूँ, उसी के कपड़े, गहने पहनती हूँ। यहाँ बैठ कर जीजी से बातें करने का मौका भी उसी ने ही दिया है। जो हमें झोंपड़ी से महलों में लाया, उसी के बारे में ऐसा कहती हूँ। जानती हूँ बड़ी कृतघ्नता है, पाप है····· क्या करूँ ?

विजयम्मा—न कृतघ्नता है न पाप! यह भी अच्छी रही ! भात खिलाकर खून चूसेगा ? कसूर तेरा है, अब तक कहा नहीं। यह मार-पीट तुम कैसे सहती रही। कहीं निकल कर जा नहीं सकती थीं ?

वासन्ती—कहना बड़ा आसान है जीजी ! भाग कर जाएँ कहाँ ? सब समझ बैठे हैं कि राज-भोग भोगती हैं हम। उससे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी यहाँ कौन है ? परोपकारी·····समाज-सेवक·····कुलीन ! बन्धु बल भी है, ख्याति-प्राप्त भी है। किन्तु घर के अंदर क्या है—कौन जाने ? हमारी बात कौन सुनेगा, किस काम आएँगी। हम बच कर जाएँगी कहाँ ? सहन करने के अतिरिक्त चारा क्या था ?·····जहाँ तक हो सका सहन किया जीजी ! बहन ने महीनों की बीमार पसलियों पर उसके पैर का गुरु आघात सहन किया, चुपचाप ! एक शब्द भी बाहर न आया।

विजयम्मा—(सिहर कर) हेंऽ। वासन्ती ! उसने भारती को,·····कोई पिशाच भी उसे सताने की न सोचेगा ! हाय···हाय, कितनी असहाय है वह !

वासन्ती—डाक्टरी पढ़ने को लात मार कर कहीं नौकरी करने की मैंने यों ही नहीं सोची थी। जीजी ! और कहूँ तुम्हें एक बात····· मेरी शादी की बात चली तो उनके मन में विष घोल कर उन्हें भगा दिया। उन्हें तो भगवान् का भी डर नहीं है····· (सिसकती है) मेरी बात जाने दीजिए जीजी ! हो सके तो जाकर बहन की रक्षा कीजिए।

विजयम्मा—वासन्ती, उसकी रक्षा का क्या रास्ता है ? जाकर उसे यहाँ ले आऊँ तो कैसा ? डाक्टर मेनोन भी कल यहाँ आये थे। कुरुप भाई भी उसे अस्पताल भेजने को सहमत हैं।

वासन्ती—डाक्टर बड़े सीधे हैं, जीजी ! अन्दर की चोट देखे बिना बाहर लेप करते हैं। बहन अस्पताल भेज दी गयी तो फिर मैं वहाँ अकेली रह जाऊँगी·····

विजयम्मा—(दृढ़ स्वर में) नहीं, नहीं, मैं इसका भी उपाय निकालूँगी। वासन्ती, तू तनिक भी मत घबराना। ज़रा उन्हें दफ्तर से आ जाने दे। उनके आते ही हम वहाँ आएंगे। ज़रा बात तो बता, तुझ से शादी करने वाला कौन था ! उसे बुलाकर सच्ची बात बताएं तो·····तेरे मन का आदमी है न ?

वासन्ती—जीजी, मैंने उन्हें बातें करने को आग्रहपूवक यहां बुला भेजा है। शायद आ जाएं।

विजयम्मा—अच्छा किया। ठीक किया तू ने। यह भी तेरा ही घर है। घबरा मत। भगवान् नहीं है क्या ? ओह··· मुँह देखकर आदमी को कैसे जान सकते हैं ? बातें मीठी-मीठी करेंगे, पर करते

क्या-क्या हैं—मैंने यह न सोचा था। उसे सताने की हिम्मत भी कोई करेगा, मैं कल्पना भी नहीं कर सकती। बच्ची कैसी है?

वासन्ती—भगवान् ही रक्षक है। माँ-बाप को जानती ही नहीं, मुझ पर ही रहती है। मैं खिलाऊँ, पिलाऊँ तो खाए-पिएगी। लोरी गाऊँगी तो सोएगी। उस घर से सारा नाता तोड़ कर कैसे चली जाऊँ जीजी! जाऊँ अपने उसी नरक में अब!

विजयम्मा—(लम्बी साँस लेकर) हुँ! क्या करूँ·····गाड़ी से आयी थी?

वासन्ती—हाँ, जीजी! ओह·····मैं तो भूल ही गयी। वेलु खत ले गया है·····वह लौट आता!

विजयम्मा—अरी, कालेज से सीधी आ रही है! कुछ खाया-पिया भी न होगा तूने?

वासन्ती—प्यास लगी है जीजी! बस थोड़ा पानी चाहिए!

विजयम्मा—मैं अभी लायी, तू यहीं आराम कर। (जाती है)

(वेलु म्लान-मुख से प्रवेश करता है)

वासन्ती—वेलु पिल्ले, इतनी जल्दी कैसे लौट आया?

वेलु—लाँज तक न जाना पड़ा, रास्ते में ही मिल गये।

वासन्ती—आये हैं यहाँ?

वेलु—हाँ!

वासन्ती—इधर भेज दे उन्हें। (वेलु जाता है)

[बालचन्द्रन् का प्रवेश]

वासन्ती—आप अच्छे आगये! यहाँ दूसरा कोई नहीं है। अपना घर समझ कर धैर्य से बातें कर सकते हैं।

बालचन्द्रन्—वासन्ती, मुझे अब कुछ कहना-सुनना नहीं है।

वासन्ती—तो भी मुझे कुछ जानना है। जीजा जी ने कल जो आप से कहा, उस पर आपको विश्वास है ?

बालचन्द्रन्—सुनकर मैं चौंक गया। कँपकपी अब तक दूर नहीं हुई। अब भी सिर चकरा रहा है।

वासन्ती—(दृढ़ स्वर में) यदि आपको उनकी बात पर विश्वास है तो फिर मुझे कुछ नहीं पूछना।

बालचन्द्रन्—अब यही तो वासन्ती को जानना है कि मैं उसे स्वीकार कर सकता हूँ या नहीं ?

वासन्ती—यह प्रश्न पीछे उठेगा। पहले यह जानना है कि आपको जीजा जी की बात पर विश्वास है या नहीं ?

बालचन्द्रन्—चाहे जो हो, मैं वासन्ती को स्वीकार करने को तैयार हूँ। मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया है।

वासन्ती—इसका मतलब क्या समझूँ ? आप मुझे दुश्चरित्र समझते हैं, फिर भी स्वीकार करेंगे यही न ?

बालचन्द्रन् आपने ठीक समझा। मेरा मन नहीं चाहता कि वासन्ती का तिरस्कार करूँ। मैं अपना वादा नहीं तोड़ता।

वासन्ती—तो अपना दिमाग़ परेशान न करें। मैं कलंकिनी हूँ····· सतीत्व बेच चुकी हूँ·····पापिनी हूँ, फिर भी आप दया पूर्वक स्वीकार करेंगे। धन्यवाद आपको ! आपका सिर शायद इसी विचार से चकरा रहा था ? आपने यह भी सोचा कि भविष्य में इस प्रकार हम कैसे जियेंगे, रहेंगे। नहीं, अब हम विदा लें !

बालचन्द्रन्—हम बिछुड़े बिना रहने-जीने की कोशिश करें। मुझे यकीन है कि आगे हम एक होकर जी सकेंगे।

वासन्ती—जी नहीं, इसके लिए मैं तैयार नहीं हूँ।

बालचन्द्रन्—जो मुझे सूझा, मैंने कह दिया। आखिर मैं भी इन्सान हूँ।

वासन्ती - आपकी ईमानदारी का मैं सम्मान करती हूँ। मगर यह सोच कर कि आपने मुझे कंलकित समझा घोर वेदना होती है मुझे। ओह! आपने यह कैसे विश्वास किया कि मैं अपने माथे पर कलंक का अदृश्य टीका लगाये आपसे प्रेम-याचना करने दौड़ी चली आयी थी ? बस·····हो चुका! इतना निकट होने पर भी हममें कितनी दूरी है!

[रोती हुई और आँखें पोंछती कमरे में चली जाती है। बालचन्द्रन् "वासन्ती, वासन्ती" कहता हुआ पीछे जाता है। विजयम्मा ट्रे में चाय और नाश्ता लेकर आती है।]

विजयम्मा—वासन्ती !·····कहाँ हो !

[बाहर से शेखर नायर का प्रवेश]

शेखर—उसे ढूँढ़कर ही रहोगी ?

विजयम्मा—उसी के लिए लायी हूँ।

शेखर—ऐसी क्या शर्त है कि यह उसे ही पिलाएगी।

विजयम्मा—यह हँसी-दिल्लगी का समय नहीं है।

शेखर—वह गयी घोड़ा-गाड़ी में बाहर ! तू चाय इधर ला·····

विजयम्मा— (ज़रा देर सोचकर) गयी ? अचम्भा क्या है ? यहाँ बैठती कैसे ?

शेखर—हुँ, मेरी वजह से चली गयी क्या ?

विजयम्मा—(अर्ध-स्वगत स्वर में) वह राक्षस उन दोनों को मार डालेगा—कहीं की न रहीं दोनों। जब से सुना, मेरा हृदय फट रहा है।

[बात की गम्भीरता समझकर शेखर नायर निकट आता है।]

शेखर—क्या हुआ विजया ? क्या कहती थी वासन्ती ?

विजयम्मा—आइए, सब बताऊँगी। ईश्वर क्षमा नहीं करेगा उसे। कैसे सह लेती हैं ? ऊपर से दूध-पीत बच्ची है। कम से कम उसका तो ख्याल रखना था। हमें चलना है वहाँ, अभी बताती हूँ, सब कुछ। (आँसू पोंछती है।)

[यवनिका-पतन]

छठा दृश्य

[**रंगमंच-संकेत** :

कुरुप का घर। रंगमंच पर मेज़ और कुर्सी। (ध्वनि-विस्तारक से) भारती के कमरे की बातचीत सुनायी पड़ती है। वासन्ती रंगमंच पर है। मेज़ पर सफ़ेद दस्तरख़ान बिछा देती है। तश्तरी आदि आवश्यक उपकरण यथास्थान एक-एक करके रखती है, और उनमें भोजन परोसते-परोसते अन्दर की बातचीत भी सुनती जाती है।]

विजयम्मा—जानती हो मैं क्यों आयी हूँ ? भारती को अपने यहाँ ले जाने के लिए।

भारती—हाय·····क्यों ?·····नहीं, बड़ा सिर-दर्द है इसमें, नहीं····· मेरे कारण·····!

विजयम्मा—ऐसा मत कहो। इस मनहूस सूने घरसे हटते ही रोग दूर हो जाएगा। डाक्टर की भी यही राय है।

भारती—डाक्टर का ही कहना काफ़ी नहीं है।

विजयम्मा—कुरुप भाई को भी एतराज़ नहीं है।

भारती—कहा था उनसे ?

विजयम्मा....हाँ·····

भारती—वासन्ती से भी ?

विजयम्मा—वासन्ती ! उसने ही तो ज़ोर देकर कहा था कि भारती को या तो अस्पताल ले जाऊँ या अपने यहाँ।

भारती—ऐसा कहा उसने ?

विजयम्मा—हाँ, इसमें शंका की क्या बात है ?

भारती—मुझ से तो कुछ कहा नहीं।

विजयम्मा—हाँ, हाँ, आज ही आकर कहा था।

भारती—कहेगी वह·····उसे ज़रूरत भी होगी।

विजयम्मा—उसने भारती की भलाई के ख्याल से ही कहा है न ?

भारती—अब वह मुझे, यहाँ से अलग भी करेगी। मैं सब जानती हूँ। कई दिनों से वह इसी कोशिश में है।

विजयम्मा—उस पर किसी दुरुद्देश्य का आरोप लगाना पाप है।

भारती—जीजी क्या जानती हैं ? मैं जाऊँ तो वह यहाँ अकेली रहेगी···· मैं यहाँ पड़ी हूँ, अब यही एक बाधा है। नौकरी मिली थी उसे, वह गयी क्यों नहीं ?

विजयम्मा—भारती को इस हालत में छोड़ कर कहाँ जाए ?

भारती—जीजी, वासन्ती को अपने घर ले जाइए !

विजयम्मा—बीमार तो भारती है। इलाज भी भारती का ही करना है·····एक बात पूछूँ, क्या कोई दिन ऐसा है जो तूने बिना रोए बिताया हो ?·····जानती हूँ पूछना ठीक नहीं। तेरे प्रति कुरूप भाई का व्यवहार कितना क्रूर है !

भारती—उनकी डाँट-फटकार सहती·····यहीं पड़ी-पड़ी मरूँगी मैं। मुझसे इतनी अधिक घृणा का कारण क्या है·····अब सब मेरी समझ में आ रहा है !

विजयम्मा—ऐसी अवस्था में भारती से क्या कोई घृणा कर सकता है !

भारती—नहीं, आज मैं घिनौनी हो गयी हूँ·····मेरे पास तक नहीं फटकते। कोई अपराध मैंने नहीं किया, सब·····सब की जड वही·····

विजयम्मा—तू ऐसा कुछ न सोच। यह वहम दूर करने को ही सही, कुछ दिन तू मेरे घर चल।

भारती—नहीं। एक बार गयी तो फिर लौटूँगी नहीं·····मैं यहीं रहूँगी। यह सब उसी का कौशल है। पर जीते जी यह होने न दूँगी। (हाँप जाती है) कैसी कमज़ोरी है,···जीजी थोड़ा पानी····

विजयम्मा—यह ले·····धीरे-धीरे पी, थोड़ा पी, थोड़ा-थोड़ा। तू इतनी क्षुब्ध हो चले तो कैसे·····

भारती—जाओ जीजी, उनसे यही कहना, मुझे कहीं न भेजें।

विजयम्मा—अच्छा, ज्यादा बैठी तो फिर बोलने लगेगी। सवेरे आऊँगी। ·····चादर उढ़ा दूँ।

भारती—हाँ, हाँ ·····

विजयम्मा—बत्ती जलने दूँ ?

भारती—नहीं·····जीजी·····

विजयम्मा—क्यों क्या बात है ?

भारती—मेरा सिर फट रहा है·····चिन्ता·····बुरी-बुरी चिन्ता····· नहीं····· वासन्ती मुझे धोखा न देगी। ·····मैं ही पागल हूँ। मन में कैसे-कैसे·····

विजयम्मा—धीरे बोल·····धीरज रख·····कोई बात नहीं है····· तसल्ली से काम ले। आराम से लेट। मैं कल फिर आऊँगी।

भारती—कल आना जरूर ! ओह·····जरा सो सकती तो·····

[बाहर रंगमंच पर विजयम्मा का प्रवेश। वासन्ती आँसू बहाती मूर्तिवत् खड़ी है।]

विजयम्मा—सुना तूने ?

वासन्ती—हाँ सुना, जीजी·····कुछ दिन से यही सुन रही हूँ।

विजयम्मा—तू कातर मन हो। कमजोर दिमाग़ में ऐसी ही बातें उठा करती हैं। बिना सिर पैर की बातें!

वासन्ती—जड़ हो गयी हूँ। सुन-सुन कर काठ बनी यह भी सुनूँगी। परवाह नहीं ......तो फिर जीजी?

विजयम्मा—वह डाक्टर के यहाँ गये हैं भारती से बातें करके। मुझे वहाँ आने को कहा है।

वासन्ती—अच्छा ही है। दोनों को साथ लेकर जीजी, यहाँ जरूर आना।

विजयम्मा—आज तो बड़ी देर हुई......अब कल सवेरे ही आएगे...... कार में।

वासन्ती—नहीं, जीजी, रात को ही आना, जरूर, जरूर।

विजयम्मा—(ध्यान से उसका मुँह देखकर) क्यों?

वासन्ती—जरूरी है जीजी ......तुम्हारा रात को ही आना जरूरी है।

विजयम्मा—अच्छा तब......रात को ही आएँगे... ...कुरुप भाई कहाँ हैं?

वासन्ती—नहाते हैं।

विजयम्मा—आएँ तो कहना मैं चली गयी हूँ। ......वह नाणी कहाँ गयी......आजकल दीख नहीं पड़ती।

वासन्ती—वह बच निकली। चली गयी।

विजयम्मा—चली गयी? ऐसे समय! कैसी कृतघ्न है?

वासन्ती—जाती न तो क्या करती? उसके भी इज़्ज़त है, उसकी रक्षा करना भी कर्तव्य है। इज़्ज़त पर आँच आते कैसे देखती? कल देर तक मैंने उसे रोते देखा। उसे जाने की सलाह मैंने ही दी।

विजयम्मा—हाय-हाय!

[पंकज गरम-गरम व्यंजन एक बर्तन में लाकर मेज़ पर रख कर चला जाता है।]

विजयम्मा—तो पंकज अब खाना भी बना रहा है ?

वासन्ती—पिटकर, ठोकर खाकर भी नहीं जाता·····इस घर से चिपटा हुआ है।

विजयम्मा—बेचारा !

वासन्ती—तो जाइये जीजी ! जल्दी ही लौटना।

विजयम्मा—वासन्ती, आज ही आना ज़रूरी है।

वासन्ती—बिल्कुल ! न होता तो इतनी ज़िद क्यों करती ?

विजयम्मा—अच्छा, तब हम आएंगे। (जाती है)

[वासन्ती तश्तरियों को यथास्थान रखती है। पंकज एक गिलास में दूध लिये आता है। दूध ढककर मेज़ पर रखता है, और वासन्ती का मुँह देखता है।]

वासन्ती—खरीद लाया, पंका ?

[पंकज एक 'पैकेट' उसकी ओर बढ़ाता है। उसकी करुणार्द्र एवं बोलती-सी दृष्टि उस पर टिकी रहती है।]

पंकज—(संकेत से पूछता है—क्या है इसमें ?)

वासन्ती—कुछ नहीं, सिर में बहुत दर्द है। उसकी दवा है।

पंकज—(आँख गढ़ा कर देखता है और संकेत से कहता है —दर्द नहीं है)

वासन्ती—नहीं है ? कौन कहता है। तू बेकार क्यों डरता है ? जीजा जी नहा नहीं चुके क्या ?

पंकज—(उसकी बात का जवाब न देकर समझाता है—वह दवा मुख में मत डालना।)

वासन्ती—दवाओं के विषय में तुझसे अधिक जानकारी मुझे है भैया ! (वासन्ती उस पुड़िया को एक बार देखकर साड़ी के अन्दर छिपा

लेती है' पंका ! जीजा जी, नहा कर आते होंगे। तू यहीं रहना। नाराज़ मत होना। सब जीजा जी की इच्छा के अनुसार परोस देना।

[वासन्ती के मुँह की ओर देखता रह जाता है]

वासन्ती—मैंने कहा, सो सुना तू ने?

पंकज—(सङ्केत करता है—सुना मैने, यथावत् करूँगा।)

वासन्ती—पूछें तो समझाना सिर-दर्द की वजह से ज़रा लेटने गयी हूँ।

पंकज—(सिर हिलाता है—अच्छा!)

वासन्ती—तश्तरी में नमक रख दिया है न? और हाँ, बाद में पीने को दूध? सब है.....अच्छा तो मैं जाती हूँ।

पंकज—(रोक कर पूछता है—मैंने जो पैकेट दिया था, कहाँ है।)

वासन्ती—(ज़रा देर पंकज की आंखों में झाँक कर) वह दवा? कहा न, वह मेरी वेदना के लिए है।

पंकज—(हाथ बढ़ाता है—मुझे दे दो।)

वासन्ती—तू क्या करेगा? ज़रूरत तो मुझे है न?

[पंकज उसकी ओर देखता रहता है, फिर हिचकियां ले-ले कर रो उठता है।]

वासन्ती—नहीं रे! तुझसे झूठ बोलूँगी क्या? इस परिचित दुनियाँ में आदमियत अगर देखी है तो तुझ में। तू ही है जिसे मुझसे हमदर्दी है स्नेह है.....तुझसे मैं झूठ बोलूँगी?

[वासन्ती बढ़ कर उसका कन्धा थपथपाती है। आंसू बहाता पंकज खिल उठता है। वासन्ती जल्दी से कमरे में चली जाती है। पंकज आंसू पोंछता है, तभी कुरुप आता है।]

कुरुप—गयी विजयम्मा?

पंकज—(संकेत से—गयीं।)

कुरुप—वासन्ती कहाँ है रे ?

[पंकज दुविधा में पड़ जाता है]

कुरुप—बोल रे, कहाँ है ?

पंकज—(कमरे की ओर इशारा करके—सिर में दर्द है, सोने गयी हैं।)

कुरुप—ओ हो, चैन नहीं मिलता····हैं न ? हुं····साढ़े नौ बजे हैं ! फाटक बन्द किया ?

पंकज—(सिर हिला कर—नहीं।)

कुरुप—बन्द कर दे·····ताला लगा दे·····ठहर·····एक कुर्सी यहाँ ला। (पंकज कुर्सी लाता है) यहाँ रख, एक तश्तरी भी ला। (पंकज तश्तरी लाता है) यहाँ रख····· हुँ····अब तू जा···· मैं परोस कर खा लूँगा, बुलाऊँ·····तभी आना। (पंकज खड़ा रहता है) क्यों रे ! जाने को कहा न·····हुँ ऽ

(पंकज चला जाता है। कुरुप कुर्सी पर आ बैठता है। धीमे स्वर से पुकारता है—) वासन्ती·····!

(ज़रा ऊँची आवाज़ से—) वासन्ती ऽ

(जवाब न मिलने पर मेज़ पर घूँसा मार कर उठा है और लगभग गरज कर—)

वासन्ती, दरवाज़ा खोल·····तोड़ता हूँ मैं लात मारकर ····· खोल·····नहीं खोलेगी ? नहीं खोलेगी तू, (लात मार कर) देखता हूँ कैसे नहीं खोलती

[ज़ोर से लात मारता है। साँकल टूट जाती है और दरवाज़ा एक ओर झूल जाता है। कुरुप लपक कर अन्दर जाता है और अन्दर से वासन्ती को हाथ से पकड़ कर घसीटता लाता है।]

खोलने को कहा था ? ··· ·····खोला क्यों नहीं ? तुझे निगल जाऊँगा क्या ?

वासन्ती—(असह्य वेदना से) जीजा जी !

कुरुप—(हाथ जोड़कर) चल, बैठ कुर्सी पर।

वासन्ती—मैं ?

कुरुप—हुँ ऽ ऽ, तुझे मैं अपनी नौकरानी की हैसियत से नहीं पालता। सब परोस कर अन्दर जा बैठती है, दरवाज़ा बन्द करके। अब से मेरे साथ इसी जगह सामने बैठकर खाना खाया कर।

वासन्ती—इसका जिसे अधिकार है वह कमरे में पड़ी है।

कुरुप—तेरे बैठने का बोझ भी यह कुर्सी संभाल लेगी।

वासन्ती—कुर्सी मुझे सँभाल लेगी, पर मेरा हृदय मुझे न सँभाल सकेगा।

कुरुप—हृदय पर इतना भार है तो इसका एक भाग मैं भी ढोऊँगा।

वासन्ती—जीजा जी, एक भाग क्यों ?····मेरा कृतज्ञतापूर्ण सारा हृदय आपके ही लिए नहीं है क्या ?

कुरुप—कृतज्ञतापूर्ण हृदय ·····मिट्टी का टुकड़ा····· !

वासन्ती—जीजा जी को वह तुच्छ ही लगेगा। मगर हमारा जो कर्त्तव्य है, उसकी सीमा नहीं है।

कुरुप—कृतज्ञता की इस क़दर केवल बातें करना ही क्या काफ़ी है री !

वासन्ती—मैंने कृतज्ञता में कभी कोई कमी नहीं दिखायी। आगे भी नहीं दिखाऊँगी।

कुरुप—तो यहाँ मेरी बग़ल में बैठकर खाने की आज्ञा देने पर तू मानेगी न ? मेरी ओर मुँह करके कह।

वासन्ती—किस रूप में जीजा जी ?

कुरुप —अरी यह जानने पर ही अन्न गले से उतरेगा क्या ?

वासन्ती—जीजा जी के मन की बात मालूम हो जाए तो··· ···· ।

कुरुप—मालूम हो जाए तो ?

वासन्ती - मुझे आशङ्का है, यह भात फिर पेट में न पड़ेगा ।

कुरुप—अरी पिछले सात साल से यही भात था । इसी नली में होकर गया है न ? हज़म नहीं हुआ क्या ? इस भात का ही है न यह रक्त-मांस !

वासती – मालूम न था, भात इसलिए खिलाते थे ?

कुरुप –क्या कुछ बुराई है मुझ में ? आज इतनी घृणा और नफ़रत क्यों हो गयी ! जानती न थी—भात किसलिए खिलाता था ? राजकुमारी की भाँति पाला-पोसा तो और किसी के लिए नहीं, अपने लिए ही । तू समझी नहीं यह ? शादी की बात यों चुटकी में उड़ा देने पर भी नहीं जाना ?

वासन्ती – हाँ, वह मैंने ही नहीं चाही । वह एक बिल्कुल अलग कहानी है । जीजा जी ने मुझे इसलिए पाला कि मैं आप की ही रहूँ···· ज़रा उस कमरे की ओर नज़र डाल कर कहिए···वह उस खाट पर मुरझायी, बेहोश-सी कौन पड़ी है, जीजा जी !

कुरुप—तुझे यह सुझाने की ज़रूरत नहीं है । जिसका उपभोग नहीं, उसकी उपेक्षा तो मैं करूँगा ही । तुझसे पत्नी बनने के लिए इसलिए कहा है कि उसे इस स्थिति में ही यहाँ पड़ा रहने दूँ ।

वासन्ती—पत्नी ?·····मैं ?·····आपने पालने में पड़ी बच्ची का भी ख़्याल किया ?

कुरुप—हमारे सम्बन्ध में जो विघ्न हैं, तू बस उन्हीं की याद दिलाएगी ? मैं उन सारे विघ्नों को रास्ते से हटा दूँ—इसी ओर तेरा संकेत

है क्या ? (ऊँचे स्वर में) तीनों की भलाई का ख्याल करके ही मैंने यह प्रस्ताव रखा है। यह हीले-हवाले अब नहीं चल सकते। मुझे आज·····अभी·····यह सब जान लेना है। अब तू सिसक मत, टेढ़ी बातें न कर, सीधा जवाब दे मुझे। तू सहमत है तो सब यहीं रहेंगे·····सारा वैभव तेरा मुँह देखेगा·····मैं तेरा चरण दास बन जाऊँगा। मेरी इच्छा न मानना ही तेरा निश्चय है, तो वह भी कह दूँ·····शायद तुम तीनों में से कोई सवेरा न देखेगा·····हजार कोशिशों पर भी कुछ पता न चलेगा। मैं सब के लिए तैयार हूँ। यह मत सोचना कि तुम लोगों के पीछे यहाँ सब उजड़ जाएगा। इस महल को आबाद करने कल दूसरी रमणी खुशी-खुशी चली आएगी, याद रखना ! (क्रोध को पीकर, धीरे-धीरे मुस्कराता हुआ) वासन्ती, अरी तू डर गयी·····अरी, ऐसा कुछ न होगा। (पास आ कर) तू तो बुद्धिमती है न ? किये उपकारों का ख्याल रखती है न ? (कन्धे पर हाथ रख देता है। स्तब्ध वासन्ती चौंक पड़ती है।)

वासन्ती – ऐं जीजी ?

भारती—(भीतर से, अत्यन्त दयनीय स्वर से) वासन्ती·····इधर आ ऽ ऽ (खाँसती है।)

[परदे के पीछे पार्श्व-संगीत की गत एकदम ऊँची चढ़ती है, फिर ऊँचे स्वर पर पहुंच कर रुक जाती है।]

कुरुप—(मुँह बिगाड़ कर) यहीं ठहरी रहना·····(कमरे की ओर देखकर) मैं ही जाता हूँ।

[परदे के पीछे गत धीरे-धीरे फिर चढ़ती है और ऊँची पहुँच जाती है। अन्दर का स्वर ध्वनि-विस्तारक से सुनायी देता है।]

कुरुप—अरी, यह कौशल अपने पास ही रख, जीना चाहती है तो

ज़बान मत हिलाना,..... बोलेगी ? फिर.....बोल, बोलेगी ? जानती है इस लात की ताक़त.....और जमाऊँ..... हुँ।

[वासन्ती कमरे के दरवाज़े तक जाती है। फिर तुरन्त खड़ी रह जाती है, कुछ सोचती है और एकदम निश्चय पर पहुँचती है। आँचल में रखा पैकेट हाथ में लेकर देखती है। झपट कर मेज़ पर रखे दूध के गिलास में डाल देती है, और उसे घुलते हुए ग़ौर से देखती है। कुरुप की आहट पाकर एक ओर हट जाती है।]

कुरुप—(शान्त होकर) अब तू पुकार कर देख !..... (बाहर आता है)

वासन्ती—(हाथ जोड़कर) जीजी को न सताइये .....भगवान् के लिए उसे न मारिये.....पैरों पड़ती हूँ आपके..... ।

कुरुप—रहने दे यह सब, तुझे तो उसमे स्नेह है ही नहीं। उसकी रक्षा का ज़िम्मा तेरा भी है। रास्ता मैंने तुझे बता दिया है ..... बिना किसी कठिनाई के यहाँ हम सभी जियेंगे। हुँ....कह....साफ़-साफ़ बता.....इसके बाद ही कुछ बात.....!

वासन्ती—आओ, जीजा जी ! साथ-साथ खाएं !

कुरुप—(ग़ौर से वासन्ती का मुँह देखता है) वासन्ती ! तू..... ।

वासन्ती—जीजा जी, आगे से जीजी को मत सताना। आओ.....सब ठण्डा हो गया.....कितनी देर का परोसा रखा है..... ।

कुरुप—(कनखियों से देखकर) तू पास बैठकर खाएगी।

वासन्ती—और मैं कहाँ जाऊँगी ? जीजा जी के बिना मेरा और कौन बैठा है ? जीजी और मैं, दो थोड़े हैं .....आओ, बैठो !

कुरुप—(खिलखिला कर हँसता है) मेरी अच्छी वासन्ती !.....फिर क्यों बेकार मुझे इतनी देर भड़काया ?

वासन्ती—यह जानने को कि जीजा जी कहाँ तक जा सकते हैं ? जितना

आपको संतुष्ट करूँ, उतना भड़काने का भी मुझे अधिकार है। खाते नहीं ? ·····आओ, मैं परोसूँगी।

कुरुप—यही सरसता तो मुझे चाहिए ! छी····मधुयामिनी का आरम्भ इस तरह होना ठीक नहीं। ठण्डा भात ! और चरपरा व्यंजन ! बिल्कुल बेमजा !

वासन्ती—और क्या चाहिए आपको ?

कुरुप—चलो····हम बाहर चलेंगे····समुन्दर-किनारे····बिछलती चाँदनी में··· सैर करके आएँगे।

वासन्ती—सैर-सफ़र का समय अभी नहीं आया····मेज़ पर जो कुछ है, मेरा ही बना है।···

कुरुप—भूख ज़रा भी नहीं है। चल आ बाहर चलें। वह दिन भी, जब तेरी बहन को यहाँ लाया था, ऐसा ही था। हम समुन्दर-किनारे पहुँचे, ठण्डी हवा में····।

वासन्ती—वह हवा आज भी है····।

कुरुप—हवा ही नहीं, पागल बना देने वाली चाँदनी भी है। आ···· हम चलें।

वासन्ती—अच्छा, चलें ! और कुछ नहीं लेते तो यही सही। यह रोज़ पीते ही हैं। पी लीजिये····।

कुरुप—इतना कहने की क्या····ज़रा उठा क्यों नहीं देती ?

वासन्ती—हाँ, मैं ही दूँगी। इसी से मुझे तृप्ति होगी····।

[वासन्ती गिलास उठाकर बढ़ना चाहती है। उसी समय ध्वनि-विस्तारक यन्त्र से भारती की खाँसी की आवाज़ सुनायी पड़ती हैं। मेज़ और शीशियाँ गिरने-लुढ़कने की आवाज़। नेपथ्य में वीणा से शोकपूर्ण गीत की धुन निकलती है।]

वासन्ती—(काँप कर, ऊँची आवाज़ में) जीजी···· !

कुरुप—ओह,····कोई बात नहीं···· ।

वासन्ती—कोई बात नहीं ?····[भयभीत खड़ी रह जाती है ।]

कुरुप—सारा मज़ा किरकिरा कर दिया,····यह आह-पुकार ! मैं समाप्त कर दूँगा, (ज़ोर से) आऊँ एक बार, हमेशा को बन्द हो जाए । [जाने को उद्यत होता है ।]

वासन्ती—(स्वप्न से जागती-सी) नहीं, कोई बात नहीं । पी लीजिये यह, क्या हमें चलना नहीं है ?

कुरुप—हुँ·····लाओ, (बैठ जाता है) लाओ, उँढेलो, तब आगा-पीछा क्यों ?

वासन्ती—(लम्बी साँस छोड़कर) ठीक है, आगा-पीछा करना बेकार है । लीजिए, उँढेलूँ । दूसरे किसी हाथ को यह न करना पड़े !···· ····

कुरुप—देखी तूने उसकी जलन ! उसे डर है कि कहीं कोई दूसरा हाथ तैयार न हो जाए ! हुँ·····

वासन्ती—नहीं, आप पीजिए । लाइए·····उँढेलूँ । (कुरुप आधा पी लेता है) कितनी बार जीजी को इसी तरह उँढेलते और जीजा जी को उन आँखों की गहराई में झाँकते हुए पीते देखा है । मेरे हाथों आज अन्त····· ।

कुरुप—बस·····हो गया !

वासन्ती—(चौंक कर) क्या ?

कुरुप—अच्छी चालाकी है !

वासन्ती—क्या हुआ ?

कुरुप—अब सारा मैं ही पिऊँ·····आधा तुम भी पीना·····

वासन्ती—ज़रा-सा और है·····बस एक घूँट और·····

कुरुप—ऐ·····(एक घूँट और पीता है) तेरा हाथ क्यों काँपता है ?

वासन्ती—एक नया अनुभव है न ?

कुरुप—एक नये अनुभव का आरम्भ कहो·····खैर !

वासन्ती—अन्त भी·····

कुरुप—हाँ, पुराने अनुभवों का अन्त भी·····क्या खूब !·····उसका उत्सव मनाने को अब बाकी तुम ही पीना·····लाओ मैं उँढेल दूँ !

वासन्ती—बस, इतना ही·····नहीं····· !

कुरुप—क्या अशुद्ध हो गया ? मेरे पीने की वजह से ? ला, इधर ला (**वासन्ती के हाथ से गिलास गिर कर टूट जाता है**) गिरा दिया ?

वासन्ती—ललचाना ही बदा था। जीजा जी ने न पिया होता तो सब मैं ही पीती।

कुरुप—मैंने मना किया था क्या ?

वासन्ती—नहीं, नहीं, आपका कोई दोष नहीं !

कुरुप—(मुँह बिचकाकर) ओह ! कैसा·····एक बुरा···जायका····· कड़वाहट !

वासन्ती—मेरे हाथ अच्छे नहीं ?

कुरुप—(**वासन्ती का हाथ थाम कर**) इन मृदुल हाथों का कोई दोष नहीं। सारा हाथ पसीने से भर गया है। क्यों ?

वासन्ती—कहा न ! यह नया अनुभव है ?

[**पंकज का प्रवेश। कुरुप वासन्ती का हाथ छोड़ देता है।**]

कुरुप—इधर आने को तुझ से किसने कहा ? बदमाश·····चला जा यहाँ से····· हुँ·····

[**पंकज वासन्ती की ओर देखता है।**]

वासन्ती—बेचारा खटके के मारे चला आया ? कोई बात नहीं है पंका ···तू जा·····

कुरुप तेरा आना अच्छा ही हुआ। जा जल्दी एक टैक्सी ले आ..... हम यहीं चौराहे पर हैं।

[पंकज जाता नहीं वासन्ती की ओर देखता है।]

कुरुप—अबे, वासन्ती की ओर क्या देखता है ? उसी के कहने पर जाएगा क्या ? अभी से इतना बढ़ गया ? (मेज से गिलास उठाकर उस पर फेंकना चाहता है, वासन्ती रोकती है।)

वासन्ती- यह क्या जीजा जी !.....उस बेचारे के न मारना..... आप नहीं जानते उस गूँगे से मुझे कितना स्नेह है।....मारना मत हाँ..... (पंकज से जा रे पंका तू जा.....

[पंकज आँसू भरी आँखों से दोनों को देखता हुआ जाता है।]

कुरुप—(गिलास मेज पर रखकर) हाँ..... तू कहेगी तो मुझे सुनना ही पड़ेगा। वासन्ती .....वक्षस्थल में न जाने कैसी पीड़ा होती है..... मेरे माथे पर पसीना आ गया है क्या ?

वासन्ती—हवा लगेगी तो पसीना अपने आप सूख जाएगा।

कुरुप—हम आँगन में चलें..... टैक्सी के आने तक वहीं घूमेंगे।

वासन्ती—नहीं, यहीं रहें। उस दिन जब आप जीजी को लाये थे, कितनी देर यहाँ बैठे थे।

कुरुप—तेरी बहन के आने से पहले भी कई बार हम यहाँ बैठे थे।

वासन्ती—सो तो नहीं देखा। उस दिन..... जीजी ने आपको खुश करने के लिए गाया था। उसके सुगन्ध-भीने चिकुर-जाल में एक पूरा खिलता गुलाब था। आपने वह गुलाब का फूल अपने हाथ में ले करके, उसका एक-एक दल धीरे-धीरे नोचकर, जीजी के मुख पर बिखरा दिया था।

कुरुप—उस सबकी अब याद मत दिला।

वासन्ती—मैं वह दिन भूल कैसे सकती हूँ। आपकी सुन्दर जोड़ी देख-देख

मैं फूले अंग न समाती थी। आपको याद है वह दिन, जब आप सुख-सम्पन्न जीवन का वादा करके हमें उस निर्जन झोंपड़ी से लिवा लाये थे।

कुरुप—वह सब फिर याद करेंगे····· मुझे बड़ी थकावट महसूस हो रही है। छाती में जैसे आग जलती हो ···· न जाने क्यों ?

वासन्ती—जीजी को बुलाऊँ ? पंखा झलने को कहूँ ?·····

कुरुप— उससे मुझे नफ़रत है····· तेरा झलना ही काफ़ी है।

वासन्ती—मुझ से किस दिन से नफ़रत करेंगे ? मैं गर्भवती हूँ न ?····

कुरुप— मुंह वेदना से विकृत होता है। फिर भी हँसता है) यह सुनकर वह भाग निकला ····· मुझे यह पसन्द नहीं कि दूसरा कोई तुझे अपनाले····· (हँसी उड़ जाती है। तेजी से उठता है) कैसी-बेबसी है·····पैर नहीं जमते ····· मैं आँगन में जाता हूँ····· आती नहीं।

वासन्ती—आपका अकेले जाना काफ़ी है। मैं साथ नहीं चल सकती।

कुरुप—(अत्यन्त क्षीण होकर) यहाँ तू क्या करेगी ?·····

वासन्ती—खड़ी खड़ी आपका जाना देखूँगी।·····ज़रा देर खुशी मनाऊँगी····· फिर जेल ! फाँसी !!···कौन जाने क्या ?

कुरुप—(पैर लड़खड़ाते हैं, टटोल कर मेज का सहारा लेता है) जेल ? क्यों ?····· कहाँ है तू ·····मेरी आँख को·····

वासन्ती—यहीं हूँ मैं ·····तुम्हारे गिरने के बाद ही जाऊँगी।

कुरुप—हें एं ऽऽऽऽ

वासन्ती—सड़-सड़ कर, कोढ़ फूट-फूट कर तुम्हारा शरीर गलना चाहिए था। चारा डाल कर, अनाथों को पकड़ कर, खिला-पिला कर, रक्त-माँस चूस कर उन्हें गली में फेंक देना ही तुम्हारा काम है।

तिल-तिल करके मारना था तुझे, मैंने तुरन्त मार डाला, इसका मुझे खेद है। मैंने तुम्हें विष दिया है·····

[कुरुप का हाथ ऊपर ऊँचा उठता है। किसी को मुट्ठी में भींचकर मरोड़ने की चेष्टा करता है। कुछ क्षण तक यही मुद्रा रहती है। फिर एक काष्ठ-मूर्ति की भांति नीचे लुढ़क जाता है।····

—कमरे में बच्ची का रोना सुन पड़ता है। 'जीजो, जीजी' पुकारती आवेगपूर्वक वासन्ती भीतर जाती है।····

—विजयम्मा, डाक्टर, बालचन्द्रन्, शेखर इत्यादि रंगमंच पर आते हैं। कुरुप का मृत शरीर देखकर उसके निकट जाते हैं। भयभीत स्वर से विजयम्मा पुकारती है—'वासन्ती'।····

—वासन्ती दरवाजे पर दिखायी पड़ती है। सबका ध्यान उधर जाता है।]

वासन्ती—और उधर जीजी भी !! (फूट-फूट कर रो उठती है।)

विजयम्मा—क्या ऽ ऽ ·····भारती भी ! (गिरती-पड़ती वासन्ती को थाम लेती है।)

[यवनिका—पतन]

समाप्त

★

प्रकाशित

• काव्यशास्त्रीय निबन्ध
[परम्परा तथा सिद्धान्त-पक्ष]
मूल्य : ७ रु०

काव्यशास्त्रीय निबन्ध
[सिद्धान्त-पक्ष]
मूल्य : ५ रु०

• वैदिक साहित्य में नारी
[गवेषणात्मक लघु प्रबन्ध]
मूल्य : ४ रु०

• पशु
[मलयालम-भाषा के नाटक
'अगम्' का हिन्दी-अनुवाद]
मूल्य : १·८० रु०

• Essays on Indian Poetics
Vol. I
Price : Rs. 8/-

अन्य प्रकाशन

• रुद्रट-प्रणीत काव्यालंकार
[हिन्दी-व्याख्या-सहित]

• Essays on Indian Poetics :
Vol. II